चतुर्थ अध्याय

मीराँबाई के पदों में लक्षित भक्तिभावना का स्वरूप

चतुर्थ अध्याय

"मीराँबाई के पदों में लक्षित भक्तिभावना का स्वरूप "

हिंदी भक्ति-काव्य में "गिरधर गोपाल" से अनन्य प्रेम करनेवाली मीराँ का स्थान महत्वपूर्ण है । वह भारत के कृष्णभक्तों में एक प्रमुख स्त्री-भक्त है । मीराँ की भक्तिभावना को देखते हुए उसे भक्ति की ओर प्रेरित करनेवाली बातों पर भी विशेष ध्यान देना आवश्यक होता है ।

मीराँ की भक्तिभावना के स्त्रोत :-

मीराँ का जन्म वैष्णव भक्त एवं श्रीकृष्ण के उपासक राजपरिवार में हुआ है मीराँ के दादा जी के घर के धार्मिक और सुसंस्कारित वातावरण का प्रभाव बचपन से मीराँ के निश्छल मन पर पड़ा है । आगे चलकर उसके मानसिक विकास के साथ-साथ उसका मन भक्ति की ओर आकर्षित हो गया है । मीराँ ने बचपन से ही "श्रीकृष्ण की सेवा" का आरंभ किया, जिससे उसे परम सुख और आनंद की प्राप्ति हो गयी । मीराँ की यह "श्रीकृष्ण की सेवा" समय के साथ भक्तिभावना में दृढ़ होती गयी ।

मीराँ के संघर्षमय जीवन के कारण उसका मन संसार के प्रति अनासक्त हो गया और अनायास कृष्ण की भक्ति में रम गया । मीराँ के जीवन का अधिकांश समय श्रीकृष्ण की आराधना और भक्ति में व्यतीत हुआ । फिर उसके जीवन का नित्य कार्य श्रीकृष्ण का भजन, कीर्तन और साधुओं का सत्संग बन गया । उसने जीवनपर्यंत श्रीकृष्ण को अपना प्रियतम और पति माना । मीराँ ने अपने मन, वचन और कर्म की पूर्ण एकाग्रता से "श्रीकृष्ण" का स्वीकार किया । गहन आस्था रखकर मीराँ ने उसके लिए अपना सर्वस्व दाँव पर लगा दिया ।

मीराँ ने "श्रीकृष्ण की भक्ति" के लिए लोक-निंदा और समाज के सभी बंधनों की उपेक्षा की । इतना ही नहीं राजस्थान के सर्वश्रेष्ठ राजवंश की प्रतिष्ठा को भी त्याग दिया । इस तरह मीराँ के जीवन का एक मात्र लक्ष्य "श्रीकृष्ण की भक्ति" बन गया । डॉ॰ प्रभात के अनुसार - " मीराँ अपनी भक्ति-भावना में इतनी डूब गयी थी कि उनका जीवन कृष्णमय हो गया । कोई निंदा करे, कोई वंदना करे इससे उन्हें कोई मतलब नहीं था ।"[1]

मीराँ की भक्ति के स्वरूप के संबंध में विभिन्न विद्वानों के मत :-

मीराँ की भक्ति के स्वरूप के संबंध में अनेक विद्वानों ने अपने-अपने मत स्पष्ट किये हैं - डॉ॰ प्रभात, आ॰ परशुराम चतुर्वेदी, डॉ॰ कृष्णदेव झारी ने मीराँ की भक्ति को "प्रेमाभक्ति" कहा है । डॉ॰ भुवनेश्वरनाथ मिश्र "माधव", डॉ॰ सुमन शर्मा, श्री॰ ओमप्रकाश अग्रवाल, डॉ॰ शिवकुमार शर्मा आदि विद्वानों ने "मीराँ की भक्ति" को "माधुर्य भक्ति" कहा है । डॉ॰ नरेन्द्र भानावत, डॉ॰ रामप्रकाश, प्रो॰ देशराजसिंह भाटी इन विद्वानों ने "मीराँ की भक्ति" को निर्गुण और सगुण इन दोनों रूपों में देखा है ।

मीराँ की भक्तिभावना :-

मीराँ के संपूर्ण व्यक्तित्व में और उसकी "पदावली" में "भक्तिभावना" की प्रधानता है । उसकी "पदावली" के अध्ययन से इस बात का पता चलता है कि उसने किसी दार्शनिक परंपरा या भक्तिसंप्रदाय का स्वीकार नहीं किया है । डॉ॰ प्रभात के शब्दों में - "मीराँ न दार्शनिक आचार्य थीं और न आचार्य भक्त । वे केवल भक्त थीं, भक्ति की साकार भावना थीं ।"[2] उसकी "पदावली" का प्रत्येक पद उसके प्रेमी-हृदय की सच्ची कथा बन गया है । उसके पदों से यह बात भी स्पष्ट होती है कि उसके जीवन का एक मात्र कर्तव्य "गिरधर नागर" को रिझाना है । इसलिए मीराँ की भक्ति सहज और

स्वाभाविक रूप से अभिव्यक्त हो गयी है । फिर भी मीराँ पर कुछ संप्रदायों का प्रभाव दिखायी देता है ।

मीराँ उदार भक्त थी । उसके मन में उपास्य देव के लिए जब जैसे भाव निर्माण होते गए, उन्हें वह अभिव्यक्त करती गयी है । जिस नाम से उसने उसे पुकारना चाहा उस नाम से पुकारा है । जहाँ उसे भक्ति-भाव का जो रूप अच्छा लगा उसे वह अपनाती गयी है । इसलिए मीराँ की भक्तिभावना में भक्ति के विभिन्न रूप स्पष्ट दिखायी देते हैं । उसकी भक्ति को आसानी से समझने के लिए भक्ति को इस तरह विभाजीत किया जा सकता है ।

सगुण भक्तिभावना

§अ§ वैष्णव संप्रदाय की नवधा भक्ति

§आ§ चैतन्य संप्रदाय की माधुर्य भक्ति

भक्ति और आसक्तियाँ

निर्गुण भक्तिभावना

§क§ नाथ संप्रदाय की प्रवृत्तियाँ

§ख§ संत संप्रदाय की प्रवृत्तियाँ

सगुण भक्तिभावना :-

सभी संप्रदायों ने मीराँ की भक्ति को सगुण भक्ति के रूप में माना है । उसके प्रामाणिक पद और उसका जीवन वृत्त इस बात का प्रमाण है कि वह सगुण भक्त है । मीराँ के पदों में उसका उपास्य देव सगुण रूप में अंकित हुआ है । वह सगुण - साकार गिरधर गोपाल की उपासिका है -

"वस्यां म्हारे णेणण माँ नंदलाल ।।टेक।।
मोर मुगट मकराकृत कुण्डल अरुण तिलक सोहाँ भाल ।
मोहन मूरत साँवराँ सूरत णेण बण्या विशाल ।
अधर सुधा रस मुरली राजाँ ऊर बेजंती माल ।
मीराँ प्रभु संताँ सुखदायाँ, भक्त बछल गोपाल ।।"[3]

मीराँ की सारी भक्तिभावना सगुण साकार अवतारी कृष्ण पर केंद्रित है । डॉ॰कल्याणसिंह शेखावत ने लिखा है - "मीराँ के प्रभु सगुण, साकार, दिव्य, अवतारी और पूर्ण परमात्मा है । "[4]

मीराँ ने बचपन से ही सगुण-साकार कृष्ण की भक्ति को अपने हृदय में बसा लिया है । मीराँ का व्रजभूमि से प्रेम है । वह गोकुल-वृंदावन में रहती है । वह जीवन के अंत में द्वारिका जाकर रणछोड़ जी की मूर्ति के सामने स्वयं को समर्पित करती है । इन बातों से उसका कृष्ण-भक्त होना सिध्द होता है । मीराँ ने कृष्ण और राम में कोई भेद नहीं माना है । उसने कई पदों में अपने उपास्य देव को "राम" नाम से संबोधित किया है । मीराँ की सगुण भक्ति उसके उपास्य कृष्ण के अवतार-रूप में अधिक स्पष्ट हो गयी है । उसने अपने उपास्य को गिरधर, गोपाल, बाँके बिहारी, नंदनंदन, मोहन, साँवरो, नन्दलाल, गोविन्द आदि नामों से पुकारा है । इन सभी नामों में मीराँ को "गिरधर" नाम विशेष प्रिय है -

"म्हाराँ री गिरधर गोपाल दूसराँ णाँ कूयाँ ।
दूसराँ णाँ कूयाँ साधाँ सकल लोक जूयाँ ।। टेक ।।"[5]

मीराँ की भक्ति का आलंबन "गिरधर" ही है । मीराँ अपनी भक्ति को "गिरधर" के चरणों में समर्पित करने में ही अपने जीवन की सार्थकता मानती है ।

मीराँ कृष्ण के रूपसौंदर्य के कारण ही आकर्षित हो गयी है । उसके रूपसौंदर्य से मोहित होकर मीराँ ने उसे अपनी आँखों में बसा लिया है । कृष्ण के रूपसौंदर्य का वर्णन करती हुअी मीराँ कहती है कि उसका कृष्ण साँवला है और उसकी आँखें बड़ी-बड़ी विशाल हैं । उसके सिर पर मोर-मुकुट है, कानों में मकराकृति कुण्डल हैं और ललाट पर लाल रंग का तिलक है । उसके होठों पर अमृत रस का वर्षाव करनेवाली मुरली शोभायमान है, हृदय पर वैजयन्ती की माला है, कमर में छोटी-छोटी घंटियों से युक्त करधनी शोभित है और पैरों में सरस मधुर शब्द उत्पन्न करनेवाले नूपुर हैं । मीराँ का कृष्ण, भक्तों को सुख देनेवाला और उन पर कृपा करनेवाला है -

"वस्याँ म्हारे णेणण माँ नंदलाल ।।टेक।।
मोर मुगट मकराकृत कुण्डल अरुण तिलक सोहाँ भाल ।
मोहन मूरत साँवराँ सूरत णेण बण्या विशाल ।
अधर सुधा रस मुरली राजाँ उर बैजंती माल ।
मीराँ प्रभु संताँ सुखदायाँ, भक्त बछल गोपाल ।।"[6]

मीराँ श्रीकृष्ण के सौंदर्य और प्रभाव में आकर सुध-बुध खो गयी है । वह स्वयं को गोपी समझकर श्रीकृष्ण के सौंदर्य और प्रभाव का वर्णन करती हुअी अपनी सखीसे कहती है, "हे सखी! मैंने इस व्रज में कुछ जादू होते देखा है । व्रज नारी सिर पर मटकिया लेकर चली ही थी कि आगे रास्ते में बाबा नंद जी का पुत्र श्रीकृष्ण मिला । उसे देखकर व्रज नारी दही का नाम भूल गयी और "स्याम सलोने लो, स्याम सलोने" कहने लगी । वृंदावन की गलियों में मन को हरनेवाला कृष्ण स्नेह में डुबोकर गया । " स्नेह में डुबो देनेवाला सुंदर कृष्ण ही मीराँ का उपास्य देव है । मीराँ ने उसके सौंदर्य और प्रभाव का वर्णन करते हुए, उसके प्रति अपनी अनन्य भक्ति को ही व्यक्त किया है -

"या व्रज में कछू देख्यो री टोना ।।टेक।।

ले मटुकी सिर चली गुजरिया आगे मिले बाबा नन्द जी के छोना
दधि को नाम बिसरि गयो प्यारी " लेलहु री कोई स्याम सलोना ।
वृन्दावन की कुंज गलिन में आँख लगाइ गयो मनमोहना ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सुन्दर स्याम सुधर सलोना ।।"[7]

इस तरह मीराँ का श्रीकृष्ण के प्रति आकर्षित होना, उसके अनुपम सौंदर्य का बार-बार वर्णन करना और अपने उपास्य देव को साकार और सजीव पति के रूप में मानना इससे स्पष्ट होता है कि उसकी भक्ति सगुण भक्ति ही है ।

§अ§ वैष्णव संप्रदाय की नवधा भक्ति :

वैष्णव संप्रदाय में भगवान विष्णु की उपासना की गयी है । वैष्णव भक्तों ने विष्णू को सदा दिव्य, महान् और व्यापक शक्ति के रूप में माना है । इन भक्तों ने उपास्य देव के समीप पहुँचने के लिए ज्ञान, कर्म कोत्याग कर श्रवण, कीर्तन, आत्मनिवेदन के आसान मार्ग को अपनाया है । इस संप्रदाय की विष्णु भक्ति आगे चलकर कृष्ण-भक्ति के रूप में प्रकट हो गयी है । डॉ॰ लाजवन्ती भटनागर के शब्दों में-" वैष्णव भक्ति का मूल स्त्रोत ऋग्वेद तथा विविध सम्प्रदायों का मूल स्त्रोत विष्णु भक्ति है, जो आगे चलकर कृष्ण-भक्ति का रूप धारण कर लेती है ।"[8] इससे इस बातका पता चलता है कि विष्णु ही श्रीकृष्ण है और श्रीकृष्ण ही विष्णु है । इसलिए मीराँ ने अपने उपास्य के विष्णु रूप और कृष्ण रूप में कोई भेद नहीं माना है।

मीराँ की भक्ति पर वैष्णव संपद्राय का प्रभाव है । इसलिए मीराँ की भक्ति में वैष्णव भक्ति की कुछ विशेषताएँ दिखायी देती हैं । "वैष्णव भक्ति में "भगवान का अनुग्रह" यह महत्वपूर्ण विशेषता है । इस भक्ति में भगवान के प्रति अनन्य भाव, श्रध्दा, विश्वास आदि अन्य विशेषताएँ हैं । इस भक्ति में "नवधा भक्ति" को अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है । मीराँ की भक्ति में नवधा भक्ति के सभी अंगों का उल्लेख मिलता है -

1) श्रवण :—

मीराँ ने श्रीकृष्ण की लीला और उसके गुणों का श्रवण कर अपने भक्ति-भावको दृढ़ बना दिया है । उसने विविध संप्रदायों के साधु-सन्तों के साथ भगवद् चर्चा भी की है । मीराँ को श्रवणभक्ति की प्रेरणा साधु-संगति से ही मिली है ।

मीराँ ने अपने जीवन में साधु-संगति और हरि कथा श्रवण को विशेष महत्व दिया है । उसने "श्रीमद्भागवत्" का नित्य श्रवण भी किया है । डॉ॰कल्याणसिंह शेखावत के अनुसार- मीराँ ने कई बार वैष्णव भक्ति के आधार पर श्रीमद्भागवत का श्रवण मनन किया है ।"[9] मीराँ प्रभुचर्चा के श्रवण में ही अपने जीवनकी सफलता मानती है । वह कहती है, " हे मनुष्य! तू राम नाम का श्रवण कर । बुरे लोगों की संगति छोड़कर हमेशा अच्छी संगति में बैठा कर । नित्य भगवानके गुणों की चर्चा सुना कर । काम, क्रोध, मद, लोभ और मोह को त्यागकर अपना मन शुध्द बना ले और प्रभु की भक्ति में डुब जा "-

" राम नाम रस पीजे मनुआं, राम नाम रस पिजे ।। टेक ।।
तज कुसंग सतसंग बैठ नित हरि चरचा सुण लीजे ।
काम क्रोध मद लोभ मोह कूं, बहा चित्त से दीजे ।
मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर, ताहिके संग में भीजे ।।"[10]

2) कीर्तन :-

मीराँ के युग में पूरे देश में साधु-सन्तों और लोगों में हरि के कीर्तन की परंपरा प्रचलित थी । हरि के कीर्तन में श्रोता और वक्ता दोनों को परम आनंद मिलता है और उनके पाप दूर होकर उन्हें पुण्य-प्राप्ति होती है । डॉ॰भगवानदास तिवारी ने कहा है -"हरि-गुण-श्रवण और कीर्तन से श्रोता और वक्ता दोनों ही लाभन्वित

होते हैं और कीर्तन से उनके पापों का क्षय और पुण्य की श्रीवृध्दि होती है ।"[11]

मीराँ ने वैष्णव भक्ति की तरह " कीर्तन " को भक्ति का एक प्रधान अंग माना है । उसे भगवान के कीर्तन में रुचि है । वह सन्तों के समूह में बैठकर भक्ति के आवेश में कीर्तन करती है । उसकी आत्मा को कीर्तन में ही शांति मिलती है । मीराँ मंदिर में करताल और पखावज बजा-बजा कर नाम-कीर्तन में कहती है," हे मनुष्य ! तू अपने जीवन के पाँच पहर धन्धे में और तीन पहर नींद में व्यतीत कर रहा है । मनुष्य का यह बहुमूल्य जीवन व्यर्थ गँवा रहा है इससे तुझे ईश्वर-प्राप्ति नहीं होगी । इसलिए तुझे प्रभु को भजना आवश्यक है "-

" प्रभु सो मिलण कैसे होय ।। टेक ।।
पाँच पहर धन्धे में बीते तीन पहर रहे सोय ।
माणष जणम, अमोलक पायो, सोतै डारयो खोय ।
मीराँ के प्रभु गिरधर भजीये होनी होय सो होय । "[12]

3) स्मरण :-

सगुण और निर्गुण भक्ति में प्रभु के नामस्मरण की बड़ी महिमा है । नामस्मरण से ही भक्त के समस्त पाप दूर होते हैं और उसे मोक्ष प्राप्त होता है । मीराँ ने "नाम-धन" को अनमोल रत्न माना है । उसे इस बात का विश्वास है कि नाम की कृपा से तोते को राम-नाम पढ़ानेवाली गणिका वैकुण्ठ चली गयी । गजराज ने प्रभु का आधा नाम ही लिया था, जिससे उसका कष्ट दूर हो गया । मृत्युकाल उपस्थित होने पर पापी अजामिल के "नारायण" नाम के उच्चारण से उसे मोक्ष प्राप्त हुआ इसलिए मीराँ कृष्ण के नामस्मरण को मुक्ति का साधन मानती है । वह नामस्मरण द्वारा अपना उध्दार कर भवसागर से पार हो जाना चाहती है । अतःवह कृष्ण के नाम पर लुभा गयी है -

"पिया थारे नाम लुभाणी जी ।। टेक ।।
नाम लेतॉं तिरतॉं सुण्यॉं, जग पाहण पाणी जी ।
कीरत कॉंई णा किया, घणा करम कुमाणी जी ।
गणका कीर पढ़ावतॉं, बैकुण्ठ बसाणी जी ।
अरध नाम कुंजर लयॉं, दुख अवध घटाणी जी ।
अजॉंमेल अध उधरे जम त्रास णसानी जी ।
पुतनाम जस गाईयॉं, गज सारा जाणी जी ।
सरणागत थें वर दिया, परतीत पिछाणी जी ।
मीरॉं दासी रावली, अपणी कर जाणी जी । "13

4) पद-सेवा :-

मीरॉं ने अपने मन को श्रीकृष्ण चरण-सेवा के लिए बार-बार प्रेरित किया है । श्रीकृष्ण के चरणों को छुने से प्रल्हाद को इन्द्र का उच्च स्थान मिला है । इन चरणों ने ही ध्रुव को नक्षत्र बनाकर, अटल स्थान प्राप्त कर दिया है । इन चरणों के कारण अनाथों को आश्रय-स्थान मिला है । इन चरणों ने ही इस संपूर्ण ब्रह्माण्ड को रचा है और इन चरणों में ही यह सारा विश्व ब्रह्माण्ड व्याप्त है । मीरॉं इन चरणों की सेवा में मग्न है । इससे उसके जीवन का उध्दार होनेवाला है वह मोक्ष प्रदान करनेवाले भगवान कृष्ण के चरणों में ध्यान लगाकर अपने मन से कहती है, " हे मन ! तू श्रीकृष्ण के चरणों को स्पर्श कर । क्योंकि ये चरण सुंदर हैं, शीतलता प्रदान करनेवाले हैं । भक्त के शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक ताप को दूर करते हैं । तू हमेशा अविनाशी भगवान के चरणों का ध्यान कर "-

"मण थें परस हरि रे चरण ।। टेक ।।
सुभग शीतल कँवल कोमल, जगत ज्वाला हरण ।
इण चरण प्रहलाद परस्यॉं, इन्द्र पदवी धरण ।

इण चरण ध्रुव अटल करस्याँ, सरण असरण सरण ।
इण चरण ब्रह्माण्ड भेट्याँ, नखसिखाँ सिरी भरण ।
दासि मीराँ लाल गिरधर, अगम तारण तरण ।"14

5) अर्चन :-

अपने आराध्य के प्रति अटूट लगाव यह वैष्णव भक्तों की एक प्रमुख विशेषता है । मीराँ की भक्ति में अपने आराध्य के प्रति यही भाव दिखायी देता है वह हमेशा कृष्ण की पूजा अर्चा में लीन रहती है । डॉ॰ भगवानदास तिवारी के अनुसार , " मीराँ गिरधर नागर के पूजन-अर्चन के समय मोतियों के चौक पूरती थी और उन पर अपना तन-मन न्योछावर करती थी । "15 मीराँ आराधना के संबंध में कहती है- " अपने मन को हमेशा ईश्वर की आराधना में लगा देना चाहिए । क्योंकि जिंदगी के ये चार दिन अनार के फूल के समान दूसरे लोगों पर अपनी धाक जमाने में गँवाना अच्छा नहीं है । इससे कोई लाभ नहीं होगा ।" इसलिए मीराँ किसी का भी लोभ न करते हुए अपना जीवन ईश्वर की आराधना में व्यतीत करना चाहती है । इसी में वह अपने जीवन की सार्थकता मानती है -

" बन्दे बन्दगी मति भूल ।। टेक ।।
चार दिना की करले खूबी, ज्यूँ दाड़िमदा फूल ।
आया था ए लोभ के कारण, मूल गमाया भूल ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, रहना है बे हजूर । "16

6) वंदन :-

मीराँ की विनम्र आत्मा बार-बार "गिरधर नागर" से प्रार्थना करती है कि कृष्ण के बिना उसकी खबर लेनेवाला कोई नहीं है । उसकी रक्षा करनेवाला और उस पर दया करनेवाला वही है । इसलिए मीराँ श्रीकृष्ण के चरण-कमलों में शरण आयी है और हमेशा श्रीकृष्ण को वंदन करती है । प्रो॰ देशराजसिंह भाटी ने लिखा है, "

"ऐसे परम स्नेही गोविन्द की ही मीराँ अहर्निश वंदना करती है । वह उनके चरण-कमलों पर केवल "सीर" ही नहीं रखती, बल्कि "पाँयन" तक पड़ जाती है ।"[17] मीराँ कहती है;- " हे बाँके बिहारी जी, मैं तुम्हें प्रणाम करती हूँ । तुम्हारे माथे पर मोर के पंखों से सजाया हुआ मुकुट तथा तिलक शोभायमान है । कानों में कुण्डल हैं और अलकें इधर-उधर बिखरी हुई हैं । सब को रिझानेवाले हे कृष्ण, मैं भी तुम्हारे इस रूप पर मोहित होकर वंदन करती हूँ "-

"म्हारो प्रणाम बाँके बिहारी जी ।। टेक ।।
मोर मुगट माथ्याँ तिलक बिराज्याँ, कुण्डल, अलकाँकारी जी।
अधर मधुर धर वंशी बजावाँ, रीझ रिझवाँ, ब्रजनारी जी ।
या छब देख्याँ मोहयाँ मीराँ, मोहन गिरधर धारी जी ।"[18]

7) दास्य :-

मीराँ कहती है कि वह अपने प्रियतम कृष्ण की दासी है । वह बिना मोल के ही श्रीकृष्ण के हाथों बिक गयी है । क्योंकि मीराँ कृष्ण की इस जन्म की ही नहीं; बल्कि जन्म-जन्म की दासी है । मीराँ के कई पदों में " दासी मीराँ लाल गिरधर " , " मीराँ हरि हे हाथ बिकाणी, " जणम जणम री दासी " का उल्लेख मिलता है । दासी इस शद से मीराँ का कृष्ण के प्रति सेवा भाव और भक्ति-भाव अभिव्यक्त होता है । डॉ॰ रामप्रकाश के अनुसार,- " यह दासी शद दास्यभावना का सूचक है और उससे दाम्पत्य-अनुराग का भी बोध होता है ।"[19] मीराँ दाम्पत्य-भाव से ही एक दासी की तरह कृष्ण की सेवा करती है । मीराँ ने "म्हाणे चाकर राख्या " इस पद में कृष्ण की दासी बनकर रहने की इच्छा प्रकट की है । मीराँ कहती है कि इस संसार में कृष्ण के अतिरिक्त उसका कोई नहीं है । उसका अपने कृष्ण पर पूरा भरोसा है । वही मीराँ के सांसारिक बंधन काटकर उसे मुक्ति प्रदान करनेवाला है ।

" मैं तो तेरी सरण परी रे रामा, ज्यूं जाणे त्यूं तार ।। टेक ।।
अड़सठ तीरथ भ्रमि भ्रमि आयो, मन नाहीं मानी हार ।
या जग में कोई नहिं अपणाँ सुणियो श्रवण मुरार ।
मीराँ दासी राम भरोसे, जम का फंदा निवार । "20

8) सख्य :-

मीराँ की भक्ति में सख्य भाव की भक्ति भी पर्याप्त मिलती है । मीराँ श्रीकृष्ण को अपना पूर्व जन्म का साथी मानती है । वह नित्य श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए उत्सुक होकर बैठती है । मीराँ का कृष्ण के साथ होली खेलने और दिन-रात उसके संग रहने से सख्य भाव व्यक्त होता है ।

मीराँ का सख्य-भाव अष्टछाप के कवियों के सख्य भाव से भिन्न है । अष्टछाप के कवियों का सख्य भाव गोप-ग्वालों की मित्रता का द्योतक है; किन्तु मीराँ ने कृष्ण को सिर्फ मित्र ही नहीं तो जीवनसाथी के रूप में अपनाया है । डॉ•भगवानदास तिवारी के अनुसार- " मीराँ का सख्य भाव खिलाड़ी साथियों का सख्य भाव नहीं, सहजीवन बितानेवाले पति-पत्नी का सख्य-भाव है ।"21 मीराँ अपने जन्म-जन्म के साथी को कभी भूलती नहीं । उसे दिन-रात याद करती है । वह नश्वर संसार को त्याग कर अपना ध्यान कृष्ण चरणों में लगा देती है । मीराँ पल-पल उसका दर्शन कर उसी में मस्त रहना चाहती है -

"म्हारो जणम जणम रो साथी थाँने णा बिसरयाँ दिन राती ।। टेक ।।
थाँ देख्याँ विण कल णा पड़ताँ जाणो म्हारी छाती ।
उँचाँ चढचढ पंथ निहारयाँ कलप कलप अँखियाँ राती ।
भो सागर जग बन्धण झूँठाँ कुलरा न्याती ।
पल पल थारो रूप निहाराँ निरख निरखती मदमाँती ।
मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर हरि चरणाँ चित्त राँती । "22

9) आत्मनिवेदन :

मीराँ का अधिकांश काव्य उसका आत्मनिवेदन है । मीराँ ने कृष्ण को अपने जीवन और प्राण का आधार माना है और उससे अपना बेड़ा पार लगाने के लिए निवेदन भी किया है । प्रो॰ देशराजसिंह भाटी ने लिखा है, - " मीराँ का संपूर्ण काव्य ही आत्मा का करुण निवेदन है ।"[23] मीराँ श्रीकृष्ण के प्रेम में मतवाली होकर सखी से निवेदन करती है, - "हे सखी ! श्रीकृष्ण के बिना मुझसे एक पल भी नहीं रहा जाता। मैंने उसके रूप पर मुग्ध होकर उस पर तन-मन और जीवन न्यौछावर कर दिया है । उसके बिना मुझे खाना नीरस लगता है । मेरे नयन मुरझा गये हैं । मैं दिन रात उसकी बाट जोहती हूँ । मुझे कृष्ण का दर्शन कब होगा ? मेरे दिन-रात कृष्ण के आने की बाट जोहने में ही व्यतीत होते जा रहे हैं । कृष्ण के दर्शन न होने के कारण मेरीजीवात्मा रह-रह कर तड़प उठती है ।" -

"स्याम विणा सखि रह्या ण जावाँ ।।टेक।।
तण मण जीवण प्रितम वारया, थारे रूप लुभावाँ ।
खाण पाण म्हाणे फीकाँ सो लागाँ नैण रह्याँ मुरझावाँ ।
निस दिन जोवाँ बाट मुरारी, कबरो दरसण पावाँ ।
बार बार थारी अरजाँ करसूँ रैण गवाँ दिन जावाँ ।
मीराँ रे हरि थे मिलियाँ विण तरस तरस जीया जावाँ ।।"[24]

"आत्मनिवेदन" संसार के सभी भक्तों एवं सन्तों की साधनापध्दतियों में प्रमुख रूप से दिखायी देता है । वैष्णव भक्तों ने "आत्मनिवेदन" को अनुकूल का संकल्प, प्रतिकूल का त्याग, गोप्तृत्व-वरण, रक्षा का विश्वास, आत्मनिक्षेप और कार्पण्य में विभाजित किया है । मीराँ की भक्तिभावना में इनका विवेचन मिलता है ।

§क§ अनुकूल का संकल्प :-

"अनुकूल के संकल्प" से ही भक्त को प्रभु की प्राप्ति होती है । सच्चा भक्त अनुकूल का संकल्प अपनी विपत्तियों और विपरित दशा में भी नहीं छोड़ता । मीराँ ने एकसच्चे भक्त की तरह अपने संघर्षमय जीवन में "अनुकूल का संकल्प" लिया है । उसने प्रभु की प्राप्ति के लिए लौकिक संसार त्याग दिया है, सगे-संबंधियों को तक छोड़ दिया है और साधुसंगति में कृष्ण - सुख प्राप्त किया है । कृष्ण के प्रति अपना तन,मन,सर्वस्व अर्पित किया है ।

मीराँ की कोई निंदा करे या प्रशंसा वह "अनुकूल का संकल्प" लेती है । वहअपनी बदनामी से ड़रती नहीं । नित्य साधुसंगति तथा प्रभुभक्ति में लीन रहकर वह कहती है -

"राणाजी म्हाने या बदनामी लगे मीठी ।।टेक।।
कोई निन्दो कोई बिन्दो, मैं चलूँगी चाल अपूठी ।
साँकड़ली सेरयाँ जन मिलिया क्यूँ कर फिरूँ अपूठी ।
सत संगति मा ग्यान सुणै छी, दुरजन लोगाँ नै दीठी ।
मीराँ री प्रभु गिरधर नागर, दुरजन जलो जा अँगीठी ।।"[25]

§ख§ प्रतिकूल का त्याग :-

"प्रतिकूल का त्याग" ईश्वर की प्राप्ति में बाधक तत्वों का त्याग करना है । मीराँ ने कृष्ण-प्राप्ति के लिए प्रतिकूल बातों का त्याग करते हुए कहा है कि उसका गिरधरगोपाल के अतिरिक्त और दूसरा कोई नहीं है । उसका प्राणाधार कृष्ण ही है । उसके लिए मीराँ ने संसार के सभी रिश्ते समाप्त कर दिये हैं । लोक-लाज त्यागकर

वह साधुओं के साथ अपना भक्तिपूर्ण जीवन व्यतीत करती है । मीराँ ने अपने आँसुओं से सींच-सींच कर हृदय में कृष्ण-प्रेम की बेल बोयी है । दही को मथकर सिर्फ घी निकाल लिया है । अर्थात् मीराँ ने नश्वर सांसारिकता को छोड़ सारस्मी कृष्णभक्ति को ग्रहण किया है -

म्हारां री गिरधर गोपाल दूसरां णां कूयां ।
दूसरां णां कूयां साधां सकल लोक जूयां ।।टेक।।
भाया छांडयां, बन्धा छांड़यां छांड्यां सगां सूयां ।
साधा ढिग बैठ बैठ, लोक लाज खूयां ।
भगत देख्यां राजी ह्ययां, जगत देख्यां स्यां ।
असुवां जल सींच सींच प्रेम बेल बूयां ।
दध मथ घृत काढ़ लयां डार दया छूयां ।
राणा विषरो प्यालो भेज्यां पीय मगण हूयां ।
मीरां री लग लाग्यां होणा हो जो हूयां ।"[26]

मीराँ का मन कृष्णदर्शन के बिना बेचैन और उदास है । वह अविनाशी कृष्ण के लिए सभी भौतिक सुखों तथा अवरोधक बातों को त्याग देती है । अपने श्याम की प्रतीक्षा में बैठी मीराँ कहती है -

"आव सजनिया बाट मैं जोऊँ तेरे कारण रैण न सोऊँ ।।
जक ण परत मन बहुत उदासी, सुन्दर स्याम मिली अविनाशी।
तेरे कारण सब हम त्यागे, पाण षाण पे मण नहीं लागे ।
मीरां के प्रभु दसरण दीज्यौ, मेरी अरज काण सुंण लीज्यो ।"[27]

§ग§ गोप्तृत्व वरण :-

प्रभु का "रक्षणकर्ता" के रूप में स्वीकार करना "गोप्तृत्व वरण" है । मीराँ ने श्रीकृष्ण को "रक्षणकर्ता" के रूप में स्वीकार किया है । कृष्ण जग का उध्दार करनेवाला है । भक्तों के संकट दूर कर उनकी रक्षा करनेवाला है । कृष्ण गुणागार है, मीरॉं के हृदय का साज है । मीरॉं स्वयं को अबला और गुणहीन मानती है । वह कृष्ण को अपनी रक्षा की प्रार्थना करती हुअी कहती है -

"छोड़ मत जाज्यो जी महाराज ।।टेक।।
म्हा अबला बल म्हारों गिरधर, ये म्हारों सरताज ।
म्हा गुणहीन गुणागर नागर, म्हा हिवड़ों रो साज ।
जग तारण भी भीत निवारण, ये राख्यॉं गजराज ।
हार्‌या जीवन सरण रावलॉं, कठे जावॉं ब्रजराज ।
मीरॉं रे प्रभु और णा कॉंई, राखा अब री लाज ।।"[28]

मीरॉं ने सुना है कि हरि ने भक्तों के कष्टें को दूर कर उनकी रक्षा की है। हरि ने डूबते हुए गजेन्द्र की पुकार सुनते ही उसे बचा लिया है । द्रौपदी का चीर बढ़ा कर दुःशासन के घमंड को चूर-चूर कर दिया है और प्रल्हाद भक्त की प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए हिरण्यकश्यप का उदर भी फाड दिया है । इसलिए मीरॉं हरि से उसके संकट दूर करने की प्रार्थना करती है -

"हरि थें हर्‌या जण रो भीर ।।टेक।।
द्रोपता री लाज राख्यॉं थे बढ़्यॉं चीर ।
भगत कारण रूप नरहरि, धर्‌यॉं आप सरीर ।
बूड़तॉं भजराज राख्यॉं, कट्‌यॉं कुंजर भीर ।
दासि मीरॉं लाल गिरधर, हरॉं म्हारी भीर ।।"[29]

§च§ रक्षा का विश्वास :-

भक्त हमेशा प्रभु की शरण में अपने आपको सुरक्षित अनुभव करता है । भक्त को जब अपनी रक्षा का विश्वास होता है तब उसकी आत्मा सबल और निर्भय बनकर भक्ति-मार्ग पर दृढ़ होती है । प्रभु उसकी रक्षा करेगा, सांसारिकता एवं लौकिक क्लेशों से उसे मुक्ति देगा, इस बात पर मीराँ का पूर्ण विश्वास है । इसलिए उसने अपनी रक्षा का पूरा उत्तरदायित्व कृष्ण के हाथों सौंप दिया है । भक्ति-मार्ग का स्वीकार करती हुई मीराँ पैरों में घुँघरु बाँधकर नाचती है । उसका प्रेमपूर्ण नृत्य देखकर लोग उसे पागल कहते हैं और सास कुलनासी कहती है । राणा ने भेजा हुआ विष का प्याला वह हँसते - हँसते पी जाती है । उसे इस संसार की किसी भी चीज का ड़र नहीं है । वह निर्भय बनकर कहती है -

"पग बाँध घूँघर्याँ णाच्यारी ।।टेक।।
लोग कह्याँ मीराँ बावरी, सासु कह्याँ कुलनासी री ।
विष रो प्यालो राणा भेज्याँ, पीवाँ मीराँ हाँसी री ।
तण मण वार्याँ हरि चरणाँमाँ अमरित दरसण प्यास्याँ री ।
मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर, थारी सरणाँ आस्याँ री ।"[30]

§ड§ आत्मनिक्षेप :-

भक्त का अपने आपको प्रभु के हाथों में सौंपना " आत्मनिक्षेप" है । "म्हाराँ री गिरधर गोपाल दूसराँ णाँ कूयाँ" कहकर मीराँ ने अपने आपको कृष्ण के प्रति समर्पित कर आत्मनिक्षेप का परिचय दिया है । मीराँ का गिरधर अशरण-शरण कहा जाता है । उसका एक मात्र कर्तव्य पतितों का उध्दार करना है । अनेक युगों में भक्तों के दुःखों का निवारण कर उन्हें मोक्ष प्रदान किया है । मीराँ भवसागर की मँझधार में डूब रही

है और बिना कृष्ण के सहारे के उसका बड़ा अनर्थ हो रहा है । इसलिए मीराँ उसके जीवन को निभा देने की प्रार्थना करती है -

"अब तो निभायाँ, बाँह गहयाँरी लाज ।। टेक ।।
असरण सरण कहयाँ गिरधारी, पतित उधारत पाज ।
भोसागर मझधार अधाराँ थें विण घणो अकाज ।
जुग जुग भीर हराँ भगतारी; दीश्याँ मोच्छ नेवाज ।
मीराँ सरण गहाँ चरणाँरी, लाज रखाँ महाराज ।।"[31]

मीराँ ने अपना जीवन कृष्ण के लिए अर्पित किया है । वह कृष्ण से कहती है, - "हे प्रभु! मैं अब तेरी शरण में आयी हूँ, जैसे तुझे उचित लगता है; मेरा उध्दार कर । मुझे तेरे दर्शन अड़सठ तीर्थों में घूम आने से भी नहीं हुए; किन्तु हे कृष्ण! तू यह सुन ले, कि इस संसार में तू ही मेरा सब कुछ है । मुझे तो एक मात्र तेरा भरोसा है । तू मुझे इस संसार के बंधनों से मुक्ति दिलानेवाला है ।" -

"मैं तो तेरी सरण परी रे रामा, ज्यूं जाणे त्यूं तार ।।टेक।।
अड़सठ तीरथ भ्रमि भ्रमि आयो, मन नाहीं मानी हार ।
या जग में कोई नहिं अपणाँ सुणियों श्रवण मुरार ।
मीराँ दासी राम भरोसे जम का फंदा निवार । "[32]

§च§ कार्पण्य :-

भक्त का दैन्य भाव "कार्पण्य" है । अपने दैन्य को वह विवश और कातर अवस्था में प्रभु के सामने प्रकट करता है । भक्त हमेशा प्रभु दर्शन के लिए प्रभु से उसकी कृपा की प्रार्थना करता है । मीराँ भी अपनी दैन्यावस्था का वर्णन अपनी सहेली से करती हुई सखी से कहती है -, "हे सखी! मैं हरि के बिना कैसे जी सकती हूँ!

श्याम के बिनामैं बावली हो गई हूँ । मैं प्रेम की वेदना से पीड़ित हूँ । मुझ पर जड़ी बूटियों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता । जिस तरह पानी के बिना मछली तड़प-तड़प कर मर जाती है, वैसे ही श्याम के बिना मैं व्याकुल होकर तड़प रही हूँ । उसकी मुरली की धुन सुनकर मैं उसे वन-वन ढूँढती फिर रही हूँ ।" मीराँ अपना दैन्य भाव व्यक्त करती हुअी कहती है,- "हे प्रभु ! मेरे गिरधर लाल !! मुझे शीघ्र आकर दर्शन दे ।" -

"हरि विण क्यूँ जिवाँ री माय ।।टेक।।
स्याम बिना बौराँ भयाँ, मण काठ ज्यूँ घुण खाय ।
मूल ओखद णा लाग्याँ, म्हाणे प्रेम पीड़ा खाय ।
मीण जल बिछुड्या णा जीवाँ तलफ मर मर जाय।
ढूँढ्ताँ वण स्याम डोला, मुरलिया धुण पाय ।
मीराँ रे प्रभु लाल गिरधर, वेग मिलस्यो आय ।।"[33]

मीराँ कहती है कि कृष्ण ही उसके जीवन का प्राण और आधार है । तीनों लोकों में कृष्ण के बिना उसका और कोई नहीं है । उसने सारे संसार को पूरी तरह से पहचान लिया है । उसे कृष्ण के बिना यह संसार नीरस लगता है । दैन्य भाव से वहकृष्ण से प्रार्थना करती है, - "हे प्रभु ! मैं तेरी दासी हूँ । मेरी ओर भी तू जरा दया-दृष्टि से देख ।"

"हरि म्हारा जीवण प्राण आधार ।।टेक।।
और आसिरो णा म्हारा थें विण, तीनूं लोक मँझार ।
थें विण म्हाणे जग णा सुहावाँ, निरख्याँ सब संसार ।
मीराँ रे प्रभु दासी रावली लीज्यो णेक णिहार ।।"[34]

इस तरह मीराँ ने वैष्णव भक्तों की तरह आचार-विचार, व्यवहार और भक्ति के साधनों में अपना जीवन व्यतीत किया है । उसकी भक्ति-भावना में वैष्णव भक्ति की विशेषताओं का उल्लेख मिलता है । उसकी भक्ति में "नवधा भक्ति" के सभी अंगो का

समावेश हुआ है । वह नामस्मरण करके मुक्ति पाना चाहती है । कृष्ण के गुणों का गान करके आत्म-सुख पाना चाहती है और हमेशा कृष्ण के मंदिर में दर्शन के लिए जाती है । सुबह के समय वह नित्य चरणामृत लेती है, मंदिर में नृत्य करती है तथापखावज और मृदंग के साथ साधुओं की संगति में कीर्तन करती है ।

(आ) चैतन्य संप्रदाय की माधुर्य भक्ति :-

मीराँ पर चैतन्य संप्रदाय का प्रभाव दिखायी देता है । चैतन्य संप्रदाय में रागानुगा या प्रेमाभक्ति को प्रधानता दी गयी है । इस भक्ति में शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य इन पाँच अंगों का समावेश है । इन पाँच अंगों में "माधुर्य भक्ति"को प्रधानता है । मीराँ की भक्ति में "माधुर्य भक्ति" की सभी विशेषताएँ बड़ी सहजऔर सुलभता से अभिव्यक्त हो गयी हैं ।

"माधुर्य भक्ति" में भक्त उपास्य देव को पति-रूप में देखता है । इससे भक्त का उपास्य के प्रति अटूट संबंध स्थापित होता है और उन दोनों के बीच रहा-सहा अंतर मिट जाता है । मीराँ की भक्ति में यही भाव स्पष्ट हो गया है । मीराँ का कृष्ण से अनन्य प्रेम है । अनन्य प्रेम से मीराँ और कृष्ण में रहा-सहा अंतर मिट गया है और उन दोनों में स्थायी एवं घनिष्ठ संबंध स्थापित हो गया है । मीराँ ने स्वयं इस संबंध का परिचय अपने पद में दिया है -

तुम बिच हम बिच अंतर नाहीं, जैसे सूरज घामा ।
मीराँ के मन अवर न माने चाहे सुन्दर स्यामों ।।"[35]

मीराँ के पदों में दाम्पत्य भाव की तन्मयता और आत्मविभोरता है । उसने अपने और उपास्य के बीच स्त्री-पुरुष की गाढ़ी आसक्ति की कल्पना की है । इससे उसके पदों में माधुर्य भक्ति भाव की नारी सुलभ बातें और आध्यात्मिक सौंदर्य सहज और

स्वाभाविक रूप से अभिव्यक्त हुआ है । जिससे इन्हीं बातों का बोध होता है कि मीराँ की भक्ति प्रामाणिक है, उसकी भक्ति में प्रेम की अभिव्यक्ति है और उसकी अनुभूति में गहराई है । उसकी भक्ति माधुर्य भाव की ही है इसमें कोई संदेह नहीं ।

डॉ॰ कृष्णदेव झारी ने मीराँ की भक्ति माधुर्य भाव की है, यह स्पष्ट करने के लिए भक्ति की चार विशेषताओं का उल्लेख किया है, -

"1§ मीराँ स्वयं गोपी बनी है ।
2§ मीराँ की भक्ति निश्छल भक्ति है ।
3§ मीराँ ने सहज सुलभ भक्ति मार्ग का स्वीकार किया है ।
4§ मीराँ सगुण साकार गिरधर की उपासिका है ।"[36]

मीराँ व्रज गोपियों की तरह भक्ति करके कृष्ण के प्रति समर्पित हो गयी है । उसका कृष्ण के साथ जन्म-जन्म का संबंध है । मीराँ ने कृष्ण के प्रति पूज्य भाव व्यक्त किया है । उसने अपनी भक्ति को अभिव्यक्त करने के लिए किसी कृत्रिमता का आधार नहीं लिया है । उसने अपने जीवन का प्रथम लक्ष्य कृष्ण की प्राप्ति माना है ।

डॉ॰ गणपतिचन्द्र गुप्त ने मीराँ की माधुर्य भाव की विशेषताओं को स्पष्ट करते हुए कहा है, -

"1§ मीराँ का माधुर्य संबंध क्षणिक या केवल इस जन्म तक मर्यादित नहीं है, वह जन्म-जन्म का स्थायी संबंध है ।
2§ मीराँ की भक्ति में कहीं भी वासना या अश्लीलता नहीं है ।
3§ मीराँ की भक्ति का लक्ष्य कृष्ण मिलन है ।
4§ मीराँ की भक्ति का भाव स्वकीय है ।
5§ मीराँ की भक्ति में सौंदर्यानुभूति एवं प्रणय वेदना सहजता से व्यक्त हो गयी है ।"[37]

माधुर्य भक्ति के तीन प्रमुख अंग हैं - रूप वर्णन, विरह वर्णन और आत्मसमर्पण । मीराँ की भक्ति में इन तीनों का उल्लेख मिलता है ।

§1§ रूप - वर्णन :-

भक्त का उपास्य देव के सौंदर्य से मोहित हो जाने से और उस पर अपना प्राण न्योछावर कर देने से भक्त की उपास्य देव के साथ स्त्री-पुरुष जैसी गाढ़ी भक्ति होती है । मीराँ की भक्ति में यही भाव दिखायी देता है । उसके पदों में श्रीकृष्ण के नानाविध सौंदर्य का वर्णन मिलता है ।

मीराँ का कृष्ण सुंदर और परम मोहक है । वह नित्य यमुना नदी के किनारे गायों को चराने ले जाता है । अपनी मुरली के मधुर स्वर से ब्रजवासियों को मुग्ध कर देता है । कृष्ण का शरीर सुंदर है । उसकी आँखें कमल दल के समान हैं। उसकी चितवन तिरछी है; जिससे मीराँ मोहित हो गयी है और उसकी बाँकी चितवन में इतनी रम गयी है कि उसे भूलाये नहीं भूल पाती -

"म्हा मोहण रो रूप लुभाणी ।।टेक।।
सुन्दर बदन कमल दल लोचन, बाँकाँ चितवण णैणाँ समाणी ।
जमणा किणारे कान्हा धेनु चरावाँ बंशी बजावाँ मीठाँ वाणी ।
तन मन धन गिरधर पर वाराँ, चरण कमल बिलमाणी ।।"[38]

मीराँ अपने उपास्य के रूपसौंदर्य पर अपना सर्वस्व अर्पित करती है । कृष्ण के प्रथम दर्शन में ही वह उसमें खो गयी है । कृष्ण का पहना हुआ मोरपंखों का किरीट, माथे पर केसर का तिलक और मकराकृत कुण्डल से उसकी शोभा और भी बढ़ गयी है । मीराँ कृष्ण के रूपसौंदर्य और वेश §नटवर§ की दीवानी बनी है । वह कृष्ण के रूप का नित्य स्मरण करती हुई उस पर बलि-बलि जाती हुई कहती है -

"साँवरो नन्द नँदन, दीठ पड़्याँ माई ।

डार्‌याँ सब लोकलाज सुध बुध बिसराई ।

मोर चन्द्रका किरीट मुगट छब सोहाई ।

केसर रो तिलक भाल, लोचन सुखदाई ।
कुण्डल झलकाँ कपोल अलकाँ लहराई ।
मीणा तज सरवर ज्यों मकर मिलन धाई ।

नटवर प्रभु भेष धर्‌याँ रूप जग लोभाई ।

गिरधर प्रभु अंग अंग मीराँ बलि जाई ।।"[39]

मीराँ कृष्ण की सुंदरता के प्रति प्रश्न करती हुई उसे कहती है, " हे कृष्ण! तेरे केशों की ये काली-काली लटें किसने गूंथी हैं ? ऐसा लगता है यशोदा मैया ने स्वयं अपने सुन्दर और दक्ष हाथों से तेरी ये काली लटें संवारी हैं । इन लटों के कारण तू इतना सुंदर लग रहा है कि यदि तू एक बार मेरे घर के अन्दर आ जाये तो मैं अपने घर का चन्दन-द्वार भली भाँति बन्द कर लूँ ताकि तू फिर मुझ से कभी अलग न हो सके । हे प्रभु ! हे गिरधर नागर मैं तेरी इन अलकों पर न्यौछावर हूँ । " -

"हो कानाँ किन गुँथी जुल्फाँ कारियाँ ।।टेक।।

सुघर कल प्रवीण हाथन सूँ जसुमति जू णे सवारियाँ ।

जो तुम आओ मेरी बाखरिया जरि राखू चन्दन किवारियाँ ।

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, इन जुलफन पर वारियाँ ।। "[40]

मीराँ का यह रूप वर्णन माधुर्य भाव का द्योतक है । वह कृष्ण के रूप-ध्यान में खो गयी है और उसके प्रेम में दीवानी बनी है ।

मीराँ श्रीकृष्ण के रूप का वर्णन करती हुई सखी से कहती है, - "हे सखी! मेरा यह कृष्ण कन्हैया मेरे हृदय का टुकड़ा है । वृंदावन की कुंज गलियों में नंदकिशोर जब नाचता है तब उसके कुण्डलों की झकझोर मेरे सामने आ जाती है और मेरे हृदय में उसकी मनोहर छबि गड़ जाती है ।" -

"सखी म्हारो कानूड़ो, कलेजे की कोर ।।टेक।।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, कुण्डल की झकझोर ।
बिन्द्रावन की कुंज गलिन में, नाचत नन्दकिसोर ।
मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर, चरण कँवल चितचोर ।।"[41]

मीराँ कृष्ण की मादक और मोहक छबि का वर्णन करती है और उसकी रूप-माधुरी में मग्न हो जाती है । उसके अंग-अंग पर बली जाकर उसकी बाँकी चितवन से मंत्रमुग्ध हो जाती है । मीराँ के नैन मदनमोहन के रूप में अटक गये हैं । कृष्ण के रूपवर्णन के संबंध में वह कहती है -

"निपट बंकट छब अंटके ।
म्हारे णेणा निपट बंकट छब अंटके ।।टेक।।
देख्याँ रूप मदन मोहन री, पियत पियूखन मटके ।
बारिज भवाँ अलग मतवारी, णेण रूप रस अँटके ।
टेढ्या कट टेढ़े करि मुरली, टेढ्या पाग लर लटके ।
मीराँ प्रभु रे रूप लुभाणी, गिरधर नागर भटके ।।"[42]

उपास्य देव का रूपवर्णन भक्ति के सोपान का महत्वपूर्ण तत्व है । मीराँ की भक्ति में कृष्ण के रूप का वर्णन परंपरागत रूप से व्यक्त हुआ है । इसके लिए मीराँ ने परिचित उपमानों का प्रयोग किया है। इससे मीराँ का कृष्ण-रूप-वर्णन स्वाभाविक और सहजता से अभिव्यक्त हुआ है ।

§2§ विरह-वर्णन :-

माधुर्य भक्ति में भक्त अपने उपास्य देव के रूप-सौंदर्य पर आसक्त होता है। अपने प्रिय के मधुर मिलन की खुशी लूटता हैं; किन्तु मिलन के बाद विरह की व्यथा

KOLHAPUR

सहना यह प्रकृति-नियम है । माधुर्य भक्ति में विरहानुभूति को श्रेष्ठ स्थान मिला है । मीराँ के अनेक पदों में विरहानुभूति का अत्यंत प्रभावपूर्ण वर्णन मिलता है ।

मीराँ की भक्ति में विरह को प्रधानता दी गई है; क्योंकि विरह से ही भक्त को उपास्य देव का सान्निध्य प्राप्त होता है ।

मीराँ का कहना है कि दूसरों के दुःख को वही पहचान सकता है, जिसने दुःख का अनुभव किया है । मीराँ कृष्ण के विरह में दुःखी बनी है । विरह से व्याकुल बनकर मीराँ अपने कृष्णरूपी वैद्य में विश्वास प्रकट करती हुई कहती हैं, - "कृष्ण के प्रेम ने मुझे पागल बना दिया है । उसके विरह ने मुझे दुःखी बना दिया है । मेरे विरह के दुःख तथा दर्द को कोई नहीं जानता । इस दर्द को वही जान सकता है, जिसके हृदय में विरह की आग लगी है । घायल की गति घायल ही जानता है । रत्न की परख जौहरी ही कर सकता है । जिसके पास जवाहिरात नहीं है,वह उसका मूल्य नहीं जान सकता । मेरी शय्या सूली पर है । मैं वहाँ कैसे सो सकती हूँ ? मेरे प्रियतम की शय्या आकाश में है, वहाँ तक मैं कैसे पहुँच सकती हूँ? मेरी उससे भेंट कैसे हो सकती है ? मैं कृष्ण-विरह के दर्द से व्याकुल होकर दर-दर भटक रही हूँ, लेकिन मुझे ऐसा कोई वैद्य नहीं मिला है, जो मेरे इस दर्द को दूर कर दे । मेरा दर्द तभी दूर हो सकता है, जब स्वयं श्रीकृष्ण वैद्य बनकर आये और इसका इलाज करे ।"

"हेरी म्हा दरद दिवाणाँ म्हाराँ दरद न जाण्याँ कोय ।।टेक।।
घायल री गत घायल जाणयाँ, हिवड़ो अगण सँजोय ।
जौहरी की गत जौहरी जाणै,क्या जाण्याँ जिण खोय ।
दरद की मारया दर दर डोल्याँ वैद मिल्या नहीं कोय ।
मीराँ री प्रभु पीर मिटाँगा जब वैद साँवरो होय ।।"[43]

विरहिणी मीराँ पपीहे की आवाज को नहीं सह सकती । मीराँ श्रीकृष्ण के

विरह से व्याकुल होकर अपनी दुःखी मनःस्थिति में पपीहे से कहती है, - "हे पपीहे! तू पी-पी की रट मत लगा । तू प्रियतम की वाणी न बोल । यदि विरहिणी तेरी वाणी को सुन लेगी तो तेरे पंखों को मरोड देगी । तेरी चोंच काटकर उस पर नमक लगा देगी । प्रियतम कृष्ण सिर्फ मेरा है और मैं अपने प्रियतम की हूँ । उसे पुकारने का अधिकार तुझे नहीं है । अगर कृष्ण प्रियतम आज मुझसे मिलता तो मुझे तेरा यह शब्द बहुत सुहावना लगता । जिस दिन मेरा प्रियतम आएगा, उस दिन मैं तेरी चोंच को सोने से मढ़ूँगी और तुझे सिर पर बिठाऊँगी । हे कौओ! मैं प्रियतम को खत लिखूँगी । तू वह उसके पास पहुँचा दे । उसे यह भी बता दे कि दर्द की मारी मीराँ ने अन्नत्याग किया है ।" -

मीराँ कहती है, - "हे अंतर्यामी! तेरी दासी व्याकुल है और तेरी यादों में वह अपने प्राणों को त्याग रही है । इसलिए तू उसे शीघ्र ही दर्शन दे, तेरे बिना उससे रहा नहीं जाता । " -

"पपइया रे पिव की वाणी न बोल ।।टेक।।
सुणि पावेली विरहणी रे, थारो रालैली पाँख मरोड़ ।
चोंच कटाऊँ पपइया रे, उपरि कालर लूण ।
पिव मेरा मैं पीव की रे, तू पिव कहैंसू कूण ।
थारा सबद सुहावण रे, जो पिव मेला आज ।
चोंच मढ़ाऊँ थारी सोवनी रे, तू मेरे सिरताज ।
प्रीतम कूँ पतियाँ लिखूँ कउवा तू ले जाई ।
जाइ प्रीतम जी सूँ यूँ कहै रे, थाँरी बिरहणि धान न खाई
मीराँ दासी व्याकुल रे, पिव पिव करत विहाइ ।
बेगि मिलो प्रभु अंतरजामी, तुम बिन रह्यो ही न जाइ ।।" [44]

मीराँ ने अपनी विरहानुभूति को बड़े ही मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त किया है वह अपने प्रियतम के प्रति पूर्ण समर्पित होती है । उसकी सेवा के लिए मुँहबायें खड़ी

रहती है । किन्तु कृष्ण ने उसके हृदय को विरह-बाण से तड़पा दिया है, सुख तथा चैन से वंचित कर दिया है और मीराँ खड़ी-खड़ी प्रियतम की प्रतीक्षा में सूख रही है । इसलिए वह कृष्ण को उपालम्भ देने से नहीं चूकती -

"थे तो पलक उघाड़ो दीनानाथ,
मैं हाजिर नाजिर कब की खड़ी ।।टेक।।
सजनियाँ दुसमण होय बैठ्या सबने लगूं कड़ी ।
तुम विण साजन कोई नहीं है, डिगी नाव समँद अड़ी
दिन नहिं चैण रैण नहिं निदरा, सूखूं खड़ी खड़ी ।
बाण विरह का लाग्या हिये में, भूलूं ण एक घड़ी ।
पत्थर की तो अहिल्या तारी, बण के बीच पड़ी ।
कहा बोझ मीराँ में कहिये सौ पर एक घड़ी ।। [45]

मीराँ का विरह आध्यात्मिक है । वह कभी न मिटनेवाला है । उसकी विरह वेदना का एक मात्र लक्ष्य प्रियतम के प्रति समर्पित होना है । स्वयं का त्याग करना है। इसके बारेमें डॉ॰ भगवानदास तिवारी ने लिखा है, - "मीराँ के विरह के पीछे उपभोग-नहीं, त्याग है, अर्जन नहीं, समर्पण है ।"[46] आत्मसमर्पण मीराँ की विरहानुभूतिकी एक विशेषता है । मीराँ के जीवनाकाश पर विरह के काले बादल मंडरा रहे हैं । प्रियतम को मीराँ की खबर नहीं है, परिजन मीराँ के प्राण लेने पर उतारु हो गये हैं; किन्तु मीराँ की समर्पण-भावना में कोई अन्तर नहीं आता । मीराँ उसी देश को जाने के लिए प्रस्तुत है, जिसमें उसका प्रियतम रहता है -

"चाँला वाही देस प्रीतम पावाँ चालाँ वाही देस ।।टेक।।
कहो कसूमव साड़ी रँगावाँ, कहो तो भगवाँ भेस ।
कहो तो मोतियन माँग भरावाँ, कहो छिटकावाँ केस ।
मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर, सुणज्यो बिड़द नरेस ।।"[47]

मीराँ को ऐसा अनुभव होता है कि उसका कृष्ण हृदय में प्रेम-बाती जलाकरमिलन के समय उसे विरह-समुद्र में छोड चला गया है ।

"प्रभु जी कहाँ गयां नेहडो लगाय ।।टेक।।
छोड़यो म्हाँ विस्वास सँगाती, प्रेम री बाती जलाय ।
विरह समँद में छोड़ गया छो, नेह री नाव चलाय ।
मीराँ रे प्रभु कबरे मिलोगे थे विण रहयाँ ण जाय ।।"[48]

विरहदशा में आम की डाली पर बैठकर जब कोयल बोलने लगती है, तबउसका विरह और भी तीव्र हो जाता है -

"आँबाँ की डाली कोइल इक बोले,मेरो मरण अरु जग केरी हाँसी।
विरह की मारी मै बन डोलूँ, प्राण तजू करवत ल्यूँ कासी ।।"[49]

मीराँ के इस विरह में गहराई है । इसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता, केवल अनुभव किया जा सकता है । क्योंकि यह विरह एक सच्चे भक्त का विरह है ।

मीराँ ने अपने विरह को मछली, पपीहा, चातक द्वारा व्यक्त किया है । जिस तरह मछली का पानी के बिना, पपीहे का स्वाति बूँद के बिना और चकोर का चंद्रमा के बिना जीवित रहना असंभव बन जाता है उसी प्रकार मीराँ की कृष्ण के बिना स्थिति बनी है । उसे कृष्ण के अतिरिक्त संसार की सभी बातें, दुःखद लगती हैं; किन्तु अब कृष्ण जल, चंद्रमा और स्वाति बूँद की तरह निर्मोही बना है । उसे मीराँ के सुख-दुःख की कोई पर्वाह नहीं है । ऐसी स्थिति में मीराँ उसे खत लिखने बैठती है; परन्तु खत लिखते समय उसका शरीर काँपने लगता है, हृदय घबराने लगता है। वह अपने मन की बात कहना चाहती है मगर नहीं कह पाती । दुःखी

मीराँ प्रियतम से प्रार्थना करती है कि वह चरण कमलों के निकट उसे स्थान देने की कृपा करे -

"पतियाँ मैं कैसे लिखूँ, लिख्योरी न जाय ।।टेक।।
कलम धरत मेरो कर कंपत है नैन रहे झड़ लाय ।
बात कहूँ तो कहत न आवे, जीव रहयौं डरराय ।
विपत हमारी देख तुम चाले, कहिया हरि जी सूँ जाय ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर चरण ही कँवल रखाय ।।"[50]

मीराँ को दुनिया की ओर देखने का अवकाश नहीं है । उसका विरही हृदय हर पल कृष्ण-दर्शन के लिए व्याकुल है । उसकी प्रतीक्षा में वह आस लगाए बैठी है । ऐसे समय होली आयी है । सब तरफ रंगों की बरसात हो रही है । कृष्णवहाँ उपस्थित नहीं है, इसलिए होली मीराँ को खारी लगती है और सब सूना-सूना सा लगता है -

"होली पिया बिन लागाँ री खारी ।।टेक।।
सूनो गाँव देस सब सूनो, सूनी सेज अटारी ।।"[51]

कृष्ण की प्रतीक्षा की घड़ियाँ गिनते-गिनते मीराँ की उँगलियों की रेखायें घिसगई हैं; किन्तु कृष्ण नहीं आया । इसलिए मीराँ की विरह - वेदना और अधिक बढ़ गयी । मीराँ के हृदय की विरह-वेदना बाहर से दिखायी नहीं देती, वह उसके रोम-रोम में समा गयी है । अपनी विरह-वेदना को सहती हुअी मीराँ कहती है -

"लागी सोही जाणै, कठण लगण दी पीर ।।टेक।।
विपत पडयाँ कोई निकटि ण आवै सुख में सब को सीर ।
बाहरि घाव कछु नहिं दीसै, रोम रोम दी पीर ।

जन मीराँ गिरधर के उम्पर, सदकै करूं सरीर ।।"[52]

मीराँ का विरह स्वाभाविक है । मीराँ के काव्य में विरह बड़ी स्वाभाविकता से अभिव्यक्त हुआ है ।

काव्यशास्त्र के विद्वानों ने विरह के चार उपभेदों का वर्णन किया है - पूर्वराग, मान, प्रवास और करुणा । "पूर्वराग" में अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, संप्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता, मरण इन दस दशाओं को महत्वपूर्ण माना गया है । विरह की ये दसों दशाएँ मीराँ के विरह - वर्णन में मिलती हैं ।

§1§ <u>अभिलाषा</u> :-

मीराँ के मन में प्रियतम को देखने की तीव्र अभिलाषा जागृत हो गयी । उसकी अभिलाषा है कि उसका प्रियतम सदैव उसकी आँखों के आगे रहे, उसे भवसागर में डूबने से बचाए और एक बार मिलकर उससे बिछुड़ न जाए -

"पिया म्हाँरि नैणाँ आगाँ रहज्यों जी ।।टेक।।
नैणाँ आगाँ रहज्यों म्हाँणे भूल णो जाज्यो जी ।
भौ सागर म्हाँ बूड्या चाहाँ, स्याम वेग सुध लीज्यो जी ।
राणा भेज्या विष रो प्यालो, थें इमरत बर दीज्यो जी ।
मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर, मिल बिछुड़न मत कीज्यो जी ।"[53]

§2§ <u>चिन्ता</u> :-

इस दशा में विरहिणी प्रियतम से मिलने के लिए चिन्तित हो उठती है । मीराँ अपने प्रियतम के दर्शन के लिए चिन्तित होकर अपनी सखी से कहती है, "हे

सखी! पता नहीं, प्रियतम के साथ मेरा मिलन कब होगा! उस प्रियतम गिरधर के चरणकमलों में ही मुझे सुख की प्राप्ति हो सकती है । इसलिए दर्शन के उपरांत मैं उसे अपनी आँखों के निकट ही रख लूँगी ।" -

"सजणी कब मिलस्याँ पिव म्हाराँ ।।टेक।।
चरण कँवल गिरधर सुख देस्याँ राख्या नैणाँ नेरा ।
णिरखाँ म्हारी चाव घणेरो मुखड़ा देख्या म्याराँ ।
व्याकुल प्राण धरयाँ णा धीर ण वेग हरयाँ म्हा पीराँ ।
मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर, थें विण तपण घणेरा ।।"[54]

§3§ स्मृति :-

मीराँ अपने प्रियतम की याद में दिन-रात खोयी रहती है । उसे याद है कि प्रियतम के आने पर गोकुल की नारियाँ, आनंद और सुख की उस अपार राशि को देख रही हैं । कृष्ण-दर्शन के बाद उनमें से कोई गा रही है, कोई नाच रही है औरकोई हंसी-ठट्टा कर रही है । श्रीकृष्ण की रूप छवि की याद में मीराँ कहती है, "उसकी रूप छवि का तो कहना ही क्या है! उसने पीताम्बर का फेंटा बाँध रखा है और उसका सुन्दर शरीर अरगजा से सुवासित है । यह एक संयोग ही है कि मुझे गिरधर जैसा सुन्दर पति मिला है और उसे मुझ जैसी दासी ।" -

गोकुला के बासी भलेही आए, गोकुला के बासी ।।टेक।।
गोकुल की नारि देखत, आनंद, सुखरासी ।
एक गावत एक नाँचत, एक करत हाँसी ।
पीताम्बर फेटा, बाँधे, अरगजा सुबारी ।
गिरधर से सुनवल ठाकुर, मीराँ सी दासी ।।"[55]

§4§ गुणकथन :-

मीराँ का उपास्य देव असाधारण, अलौकिक है । मीराँ की सुध लेनेवाला वही है । उसके मोर-मुकुट तथा पीताम्बर की शोभा देखते ही वह मुग्ध हो जाती है। इसके कुण्डलों की छवि भी निराली है । उसने भरी सभा में द्रौपदी की लाज बचायी है । इसलिए मीराँ कृष्ण के चरणों पर बलिहारी जाती है और उसके गुणों का कथन करती है -

"थें विण म्हारे कोण खबर ले, गोबरधन गिरधारी ।
मोर मुगट पीतांबर शोभाँ, कुंडल री छब न्यारी ।
भरी सभा मा द्रुपद सुतां री, राख्या लाज मुरारी ।
मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर, चरण कँवल बलिहारी ।।"[56]

§5§ उद्वेग :-

कृष्ण के विरह में मीराँ को सुखद बातें भी प्रतिकूल लगने लगी हैं । उसे प्रियतम के बिना होली अच्छी नहीं लगती । उसे घर और आँगन भी नहीं सुहाता । मीराँ सखी से कहती हैं, - "हे सखी! मेरा पिया मुझे छोड़कर परदेश चला गया है। इसलिए सूनी सेज मुझे सर्प-सी डँस रही है और मुझे नींद भी नहीं आ रही है" -

"होली पिया विण म्हाणेणा भावाँ घर आँगणाँ न सुहावाँ ।।टेक।।
दीपाँ चोक पुरावाँ हेली, पिया परदेस सजावाँ ।।
सूनी सेजाँ व्याल बुझायाँ जाणा रेण बितावाँ ।
नींद णेणाँ णा आवाँ ।।"[57]

§6§ संप्रलाप :-

विरहिणी मीराँ कहती है, - "एक बार मिलन के पश्चात् वियोग की दारुण स्थिति कठिन होती है । यह कैसी विचित्र बात है कि सारा संसार सुख की नींद सो रहा है और मैं जाग-जागकर रात काट रही हूँ । मैंने एक पलभर के लिए प्रियतम का दर्शन कर लिया है । इतने मात्र से मेरा उससे प्रेम हो गया है, किन्तु मेरी प्रेमकथा का अन्त यह हुआ है कि मुझे अब रोते-रोते और आसमान के तारे गिनते-गिनते रात बितानी पड़ रही है ।" मीराँ कहती है कि अब उसे सुख के क्षणों की ही प्रतीक्षा है -

"री म्हाँ बेठयाँ जागाँ, जगत सब सोवाँ ।।टेक।।
विरहण बेठ्याँ रंगमहल माँ, णेण लड़या पोवाँ ।
इक विरहणि हम ऐसी देखी, अँसुवन की माला पोवे ।
ताराँ गणताँ रेण बिहानाँ सुख घड़ियारी जोवाँ ।
मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर, मिल पिछड़्या णा होवाँ ।।" [58]

§7§ उन्माद :-

मीराँ श्रीकृष्ण के विरह में उन्मादिनी के समान नाचती है । वह कहती है, - " मैं तो अपने श्रीकृष्ण के आगे नाचूँगी । नाच-नाचकर मैं अपने रसिक प्रियतमको रिझाऊँगी और उसके प्रति अपने बहुत दिन से चले आ रहे प्रेम की परीक्षा करूँगी । मैं लोकलाज, कुल की मर्यादा को त्यागकर उसके साथ प्रेम के रंग में रंग जाऊँगी ।" -

"म्हाँ गिरधर आगाँ नाच्यारी ।।टेक।।
णाच णाच म्हाँ रसिक रिझावाँ, प्रीत पुरातन जाँच्याँ री ।
स्याम प्रीत री बाँधि घुंघरजाँ मोहन म्हारो साँच्याँरी ।
लोक लाज कुलरा मरजादाँ जगमाँ णेक णा राख्याँ री ।
प्रीतम पल छब णा बिसरावाँ, मीराँ हरि रँग राच्याँ री ।।" [59]

§8§ व्याधि :-

मीराँ को कृष्ण के बिना दिन में चैन नहीं पड़ता और रात को नींद नहीं आती । वह कृष्ण की प्रतीक्षा में खड़ी-खड़ी सूखती जा रही है । उसके हृदय में कृष्ण के विरह का बाण लग गया है और वह कृष्ण को एक घड़ी के लिए भी नहीं भूल पाती है -

" सजण सुध ज्यूँ जाणे त्यूँ लीजै हो ।।टेक।।
तुम विण मोरे अवर न कोई क्रिया रावरी कीजै हो ।
दिन नहीं भूख रैण नहिं निदरा यूँ तण पलपल छीजै हो ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर मिल बिछड़न मत कीजै हो ।" [60]

§9§ जड़ता :-

इस दशा में मीराँ को खाना-पीना फीका-फीका-सा लगता है । कृष्ण की प्रतीक्षा करते हुए उसके नैन मुरझा गये हैं और उसके वियोग में प्राण तड़प-तड़पकर निकले जा रहे हैं । इसलिए मीराँ कृष्ण से बार-बार बिनती करती हुई कहती है -

स्याम विणा सखि रहया ण जावाँ ।।टेक।।
जण मण जीवण प्रीतम वारया, थारे रूप लुभावाँ ।
खाण पाण म्हाणे फीकाँ सो लागाँ नैण रहाँ मुरझावाँ ।
निस दिन जोवाँ बाट मुरारी, कबरो दरसण पावाँ ।
बार बार थारी अरजाँ करसूँ रैण गवाँ दिन जावाँ ।
मीराँ रे हरि थे मिलियाँ बिण तरस तरस जीया जावाँ ।।"[61]

§10§ मरण :-

कृष्ण बिना मीराँ के प्राण निकले जा रहे हैं । अपनी इस दशा का वर्णन करती हुई मीराँ अपनी सखी से कहती है, "हे सखी ! मैं हरि के बिना नहीं रह सकती । उसके बिना अब मेरा काम नहीं चल सकता । क्योंकि मेरा प्रेम कछुए और मेंढ़क के समान नहीं है, जो पानी में ही उत्पन्न होते हैं और उसमें ही रहते हैं, फिर भी पानी के बाहर आने पर जिनका कुछ नहीं बिगड़ता । मेरा प्रेम तो उस मछलीके समान है, जो पानी से अलग होते ही तुरन्त मर जाती है ।" -

"प्रभु बिन ना सरै माई ।।टेक।।
मेरा प्राण निकस्या जात, हरी बिन ना सरै माई ।
कमठ दादुर बसत जलमें, जल से उपजाई ।
मीन जल से बाहर कीना, तुरत मर जाई ।
दास मीराँ लाल गिरधर, मिल्या सुख छाई ।।"[62]

मीराँ का हृदय भावपूर्ण है । इसलिए उसके विरह-वर्णन में सहजता, स्वाभाविकता का बोध होता है । मीराँ के काव्य में उसकी विरह - व्याकुलता, माधुर्य भाव के एक अनन्य भक्त की तरह अभिव्यक्त हो गयी है । उसके संबंध में

डॉ • भुवनेश्वरनाथ मिश्र "माधव" ने कहा है - "मीराँ का विरह वर्णन, विरह-वर्णन के लिए नहीं है । प्रेम लपेटे अटपटे छन्दों में अल्हड़ प्रेम-योगिनी मीराँ ने अपने करुणा-कलित हृदय को हलका किया है ।"[63]

§3§ आत्म-समर्पण :-

माधुर्य भक्ति में भक्त भगवान के प्रति सर्वस्व समर्पित करता है । मीराँ की भक्ति माधुर्य भाव की है । उसके संपूर्ण काव्य में आत्मसमर्पण की भावना कूट-कूटकर भरी हुयी है ।

विरह की पराकाष्ठा में पूर्ण समर्पण का भाव होता है । तब विरही प्रिय को रिझाने के लिए उसकी इच्छा में अपनी इच्छा होने का विश्वास दिलाता है । मीराँ के काव्य में यह समर्पण भाव पराकाष्ठा की स्थिति में है । इस स्थिति में मीराँ प्रभु परबार-बार बलिहारी जाती हुअी कहती है, "मैं तो गिरधर के घर जाउँगी । गिरधर ही मेरा सच्चा प्रियतम है । उसके रूप-सौंदर्य को देखते ही मैं उसके प्रति लुभा गयी हूँ । मैं गिरधर को रिझाउँगी । वह जो पहनने के लिए देगा, वही पहनूँगी, जो खाने के लिए देगा, वही खाउँगी । मेरी उसके साथ प्रीति बहुत पुरानी है । उसके बिना अब पल-भर भी नहीं रहूँगी । जहाँ बिठा देगा, वहीं बैठ जाउँगी । यदि बेचेगातो बिक जाउँगी ।" -

"मैं तो गिरधर के घर जाऊँ ।।टेक।।
गिरिधर म्हाँरों साँचों प्रीतम, देखत रूप लुभाऊँ ।
रैण पड़े तब ही उठि जाऊँ, भोर गये उठि आऊँ ।
रैणदिना वाके सँग खेलूँ, ज्यूँ त्यूँ वाहि रिझाऊं ।
जो पहिरावै सोई पहिरूं, जो दे सोई खाऊँ ।

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.

मेरी उणकी प्रीत पुराणी, उण बिण पल न रहाऊँ ।
जनाँ बैठावें तितही बैठूँ बेचे तो बिक जाऊं ।
मीरां के प्रभु गिरधर नागर, बार बार बलि जाऊं ।।"[64]

मीराँ में कृष्ण के प्रति अनन्यता का भाव है । उसके जीवन का एक मात्र लक्ष्य कृष्णप्राप्ति है । इसलिए मीराँ संघर्षो तथा विरोधों का सामना करती हुअी अपने उपास्य की एकनिष्ठता में समर्पण भाव व्यक्त करती है । श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम देखकर चाहे सास मीराँ के साथ लड़े, ननद चिढ़ये और राणा उसे कड़ी सजा दे तो भी वह हरि को ही अपना जीवन समर्पित करती हुअी कहती है -

"हेली म्हाँसूँ हरि बिनि रहयो न जाय ।।टेक।।
सास लड़े मेरी नन्द खिजावे, राणा रहया रिसाय ।
पहरो भी राख्यो चौकी बिठारयो, ताला दियो जड़ाय ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, अवरु न आवे म्हाँरी दाय ।।"[65]

मीराँ ने लौकिक पति की मृत्यु के पश्चात् जीवन के अंत तक गिरधर नागरको ही अपना पति माना है । उसकी मधुरता पर मोहित होकर उसके पूर्व जन्म के प्रेम में मीराँ ने अपने आपको समर्पित किया है । डॉ॰भुवनेश्वरनाथ मिश्र के अनुसार,- "मीराँ का प्रेमोत्सर्गपूर्ण जीवन स्वतः समर्पण का एक अविच्छिन्न संगीत है, अविरल पीयुष प्रवाह है । मीराँ का प्रेम भक्ति और प्रीति का निखरा हुआ सुव्यवस्थित स्वरूप है ।"[66]

मीराँ का हृदय समर्पणशील नारी का हृदय है । इसलिए उसके काव्य में व्यक्त हुआ आत्मसमर्पण का आनंद और सौंदर्य अनूठा है । मीराँ अपने प्रिय को खत लिखना चाहती है; किन्तु उसका प्रिय उसके तन, मन और नयनमें समा गया है, ऐसे कृष्ण को खत लिखने और संदेशा भेजने की आवश्यकता ही नहीं है ।

मीराँ मनमोहन की चितवन और उसकी आकर्षक वेशभूषा पर मोहित है । वह उस पर पूर्ण रूप से समर्पित है । मीराँ को संसार की कोई चीज मूल्यवान नहीं लगती । कृष्ण असीम, सौंदर्यशाली और बहुमूल्य रत्न के समान है । मीराँ ने उसे हृदय की तुला पर तौलकर मोल किया है और उसी के लिए अपना तन, मन और जीवन अर्पित कर दिया है -

"माई री म्हा लियाँ गोविन्दा मोल ।।
थे कहयाँ छाणे म्हाँ काँ चोड़े लियां बजन्ता ढेल ।
थे कहयाँ मुंहोघो म्हाँ कहयाँ सस्तो, लिया री तराजां तोल ।
तण वारॉ म्हाँ जीवण वाराँ, वाराँ अमोलक मोल ।
मीराँ कूँ प्रभु दरसण दीज्याँ, जन्म को कोल ।।"[67]

कृष्ण के प्रति आत्मसमर्पण से ही मीराँ और कृष्ण में रहा-सहा अंतर समाप्तहो गया है और मीराँ कृष्णमयी हो गयी है । आत्मसमर्पण की यह स्थिति ही भक्ति-साधना में भक्ति की चरम स्थिति मानी गयी है ।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि मीराँ के काव्य में माधुर्य भक्तिके रूप-वर्णन, विरह-वर्णन और आत्मसमर्पण का समावेश हो गया है ।

भक्ति और आसक्तियाँ :

महर्षि नारद ने भक्ति की गुणमहात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति, सख्यासक्ति कान्तासक्ति, वात्सल्यासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, तन्मयतासक्ति और परमविरहासक्ति इन ग्यारह आसक्तियों का उल्लेख किया है । डॉ॰ प्रभात, डॉ॰ भगवानदास तिवारी और डॉ॰ कृष्णदेव झारी के अनुसार मीराँ की भक्ति में

इन ग्यारह आसक्तियों काउल्लेख मिलता है ।

प्रेम आसक्ति से शुरु होताहै । प्रिय के शील, शक्ति, सौंदर्य और गुण के प्रति शारीरिक, मानसिक और आत्मिक आकर्षण ही प्रेम का स्पग्रहण करता हैं । मीराँ के मन में श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम आसक्ति से ही शुरु हुआ है । कृष्ण के शील, शक्ति, सौंदर्य और गुण के प्रति मीराँ में मानसिक, शारीरिक और आत्मिक आकर्षण है । इसलिए मीराँ की भक्ति में ये ग्यारह आसक्तियाँ पायी जाती हैं -

§1§ गुणमहात्म्यासक्ति :-

मीराँ का आराध्य असीम गुणोंवाला है । वह संतों को सुख देनेवाला और भक्तों पर कृपा करनेवाला है । उसने शरणागतों की रक्षा की है । संतों ने कृष्ण के गुणों की महिमा गायी है । कृष्ण के गुणों का गान करते-करते वेद और पुराण भी थक गये हैं ।

मीराँ असीम गुणोंवाले कृष्ण की दीवानी बनी है और उसने कृष्ण को वर के स्प में प्राप्त किया है । कृष्ण के लिए उसने राज्य, नगर, सुसर, परिवार, धन, धाम आदि को त्याग दिया है और राणा द्वारा भेजा विष का प्याला चरणामृत समझकर पी लिया है । मीराँ को इस बात का पता है कि राणा द्वारा पिटारी भेजा गया काला नाग भक्तवत्सल श्रीकृष्ण के कारण ही सालिगराम की मूर्ति में परिवर्तित हो गया है । इसलिए मीराँ कृष्ण के गुणों के प्रभाव में आकर उसके गुणों की महिमा गाती हुई कहती है -

"माई म्हाँ गोविन्द गुण गाणा ।।टेक।।
राजा रुठयाँ नगरी त्यागाँ, हरि रुठयाँ कहँ जाणा ।
राणो भेज्या विषरो प्याला चरणामृत पी जाणा ।
काला नाग पिटारयाँ भेज्या, सालगराम पिछाणा ।
मीराँ तो अब प्रेम दिवाँणी, साँवलिया वर पाणा ।।"[68]

§2§ रूपासक्ति :-

प्रेमा भक्ति का आधार सगुण, साकार ब्रह्म ही हो सकता है । जो निर्गुण,निराकार है उसके प्रति प्रेम नहीं हो सकता है । इसके संबंध में डॉ॰ भगवानदास तिवारी ने "मीराँ की भक्ति और उनकी काव्य-साधना का अनुशीलन" में कहा है, - "जिसे हम देख नहीं सकते, पा नहीं सकते, उससे हम प्रेम भी नहीं कर सकते ।"

मीराँ का उपास्य देव सगुण, साकार कृष्ण है । कृष्ण की रूपमाधुरी पर मीराँ आसक्त है । वह कहती है, - "मैं अपने भवन में खड़ी थी । उसी समय अपने सुंदर मुख की आभा बिखेरता हुआ तथा मंद-मंद मुस्काता हुआ मोहन मेरे घर के सामने आ निकला । मैंने बड़ी व्याकुलता से उसे ललकारा, उसके नख-शिख सौंदर्य को देखा । मेरी लोभी आँखे उसके मादक रूप-सौंदर्य में अटक गईं और फिर लौटकर नहीं आयीं । कुटुम्बियों ने मुझे बुरे-भले बोल सुनाए; पर मेरी चंचल आँखों ने किसी का भी कहना नहीं माना और मेरी आँखें कृष्ण के रूप-सौंदर्य की गुलाम हो गयीं -

"णेणाँ लोभ्याँ अटकाँ शक्याँ णा फिर आय ।।टेक।।
रूँम रूँम नखसिख लख्याँ, ललक ललक अकुलाय ।
म्हाँ ठाढ़ी घर आपणी, मोहन निकल्या आय ।

बदन चन्द परगासतॉं, मन्द मन्द मुसकाय ।
सकल कुटम्बॉं बरजतॉं, बोल्या बोल बनाय ।
णेण चंचल अटक णा माण्या, परहथ गयॉं बिकाय ।
भलो कहॉं कॉंइ कहयॉं बुरोरी सब लया सीस चढ़ाय ।
मीरॉं रे प्रभु गिरधर नागर विणा रहयॉं णा जाय ।।"[69]

इस तरह कृष्ण के प्रति मीरॉं की रूपासक्ति व्यक्त हुई है । रूपासक्ति का ही यह परिणाम हुआ है कि मीरॉं की आँखों को उसके रूपसौंदर्य को देखने की आदत-सी पड़ गयी है । कृष्ण की माधुरी मूरत उसके हृदय पर अधिकार जमा चुकी है और आँखों की कोर उसके हृदय में चुभ गयी है । अपने प्राणाधार की प्रतीक्षा में बैठी मीरॉं कहती है -

"आली री म्हारे णेणॉं बाण पड़ी ।।टेक।।
चित्त चढ़ी म्हारे माधुरी मूरत, हिवड़ा अणी गड़ी ।
कब री ठाड़ी पंथ निहारॉं, अपने भवण खड़ी ।
अटक्यॉं प्राण सांवरो प्यारो, जीवण मूर जड़ी ।
मीरा गिरधर हाथ विकाणी, लोग कहॉं बिगड़ी ।।"[70]

§3§ <u>पूजासक्ति</u> :-

पूजासक्ति में अर्चन, वन्दन और सेवन का समावेश होता है । मीरॉं नित्य श्रीकृष्ण की पूजा, सेवा और प्रार्थना करती है । वह श्रीकृष्ण-मंदिर जाकर उसका दर्शन लेती है और उसके चरणों को स्पर्श करती है । मीरॉं को कृष्ण की पूजा, नृत्य और उसके गुणों का गान करने में ही संतोष मिलता है । इसलिए वह कृष्ण की असीम कृपा का गान करती है ।

मीराँ को वृंदावन अच्छा लगता है; क्योंकि वहाँ घर-घर श्रीकृष्ण की पूजा की जाती है और उसके दर्शन का लाभ भी मिलता है । वृंदावन में जमना नदी का निर्मल पानी बहता है, कृष्ण के लिए प्रिय दूध-दही का भोजन उपलब्ध है और मुकुट धारण किए हुए कृष्ण की मुरली का मधुर स्वर भी कुंज-कुंज में गूँज उठता है । मीराँ कहती है, - "जिन्हें वृंदावन का लाभ नहीं हुआ है, जो पूजा और भजन में अपना जीवन व्यतीत नहीं करते, उनका जीवन नीरस, निरर्थक है ।" -

"आली म्हाणे लागा वृन्दावण नीकाँ ।।टेक।।
घर-घर तुलसी ठाकुर पूजा, दरसण गोविन्दजी काँ ।
निरमल णीर बहयाँ जमणा माँ, भोजन दूध दही काँ ।
रतण सिंघासण आप विराज्याँ, मुगट धरयाँ तुलसी काँ ।
कुंजन-कुंजन फिर्‌या साँवरा, सबद सुण्या मुरली का ।
मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर, भजण बिणा नर फीकाँ ।।"[71]

§4§ स्मरणासक्ति :-

मन ही मन ईश्वर का नाम लेना ही स्मरण है । स्मरणासक्ति मन की एक स्वाभाविक स्थिति है । मीराँ दिन-रात हरि का जप, कीर्तन और स्मरण करती है मीराँ स्वीकार करती है कि उसका मन सदैव साँवरे का नाम रटता रहता है । साँवरेका-नाम-स्मरण करने से सांसारिक प्राणियों के पाप नष्ट हो जाते हैं और जन्म-जन्मों के पाप-कर्मो का लेखा मिट जाता है -

"म्हारो मण सांवरो णाम रट्‌यारी ।।टेक।।
सावरो णाम जपाँ जग प्राणी, कोट्‌यां पाप कट्‌यां री ।
जणम जणम री खतां पुराणी णाम स्याम मट्‌या री ।

कणक कटोराँ इमत भर्याँ, पीवताँ कूण नट्या री ।
मीराँ रे प्रभु हरि अविनासी, तण मण स्याम पट्या री ।।"72

§5§ दास्यासक्ति :-

मीराँ की कृष्णविषयक दास्यासक्ति कान्तासक्ति का एक अंग बन गयी है । मीराँ ने कई पदों में अपना परिचय कृष्ण की "चेरी" या "दासी" कहकर दिया है । वह कृष्ण की "चाकर" होना पसंद करती है । वह कृष्ण से निवेदन करती है कि उसका प्रभु उसे "चाकर" रख ले । वह चाकर बनकर कृष्ण के लिए बाग लगाएगी । नित्य उठकर उसके दर्शन करेगी और वृंदावन की कुँज-गलियों में प्रभु-लीला का गान गाएगी । मीराँ का विश्वास है कि उसे कृष्ण की चाकरी में ही भक्ति-भाव की जागीर प्राप्त होनेवाली है -

"म्हाणे चाकर राखाँजी, गिरधारी लाला चाकर राखाँजी ।।टेक।।
चाकर रहस्यूँ बाग लगास्यू नित उठ दरसण पास्यूँ ।
बिन्द्रावन री कुँज गलिन माँ गोविन्द लीला गास्यू ।
चाकरी में दरसण पास्यूँ, सुमिरण पास्यूँ खरची ।
भाव भगत जागीरी, पास्यूँ, जणम जणम री तरसी ।
आधी रात प्रभु दरसण दीस्यो जमणाजी रे तीरी ।।"73

§6§ सख्यासक्ति :-

मीराँ का श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम अलौकिक, सघन और अनन्य है । उसका प्रेम शुध्द आचरण से युक्त है । शुध्द आचरणवाला भक्त प्रभु के सख्यभाव को प्राप्त

करता है, जिससे भक्त की आत्मा को परम आनंद मिल जाता है । मीराँ पापी नहीं है । वह पवित्र, त्यागी और ज्ञानी है । मीराँ की सख्यासक्ति दाम्पत्य भाव के समान है, जन्म-जन्म के साथी के समान है । मीराँ कहती है कि "कृष्ण" भक्तों का सखा है । मीराँ ने उसे प्राणसखा माना है और अपना जीवन और मरण उसी के हाथों में सौंप दिया है । वही मीराँ की वेदना समझ सकता है । मीराँ का पति लौकिक पति नहीं है, जो जन्म लेकर मर जाता है । मीराँ का जीवन-सखा अलौकिक है, जिसका स्वीकार करने से उसका चूड़ा अमर हो गया है और वह अमर वधू बन गयी है -

"लगण म्हारी स्याम सूँ लागो, णेणा णिरख सुख पाय ।। टेक ।।
साजां सिंगार सुहाणाँ सजणी, प्रीतम मिल्यां धाय ।
बरणा बरयां बापुरी, जणम्या जणम णसाय ।
बर्‌याँ साजण साँवरो री,म्हारो चुड़लो अमर हो जाय ।
जणम जणम रो काण्हड़ो, म्हारी प्रीत बुझाय ।
मीराँ रे प्रभु हरि अविनासी, कब रे मिलस्यो आय ।।"[74]

7) कान्तासक्ति :-

कृष्ण-भक्ति परंपरा में कांतासक्ति अत्यंत महत्वपूर्ण भक्ति-भावना है । मीराँ ने अपने पदों में कृष्ण के प्रति इसी आसक्ति का विशेष परिचय दिया है । मीराँ कृष्ण को अपने पति-रूप में वर चुकी है । स्वप्न में ही दीनानाथ से उसका परिणय हुआ है । मीराँ कहती है कि स्वप्न में छप्पन करोड़ बरातियों के साथ दूलह के रूप में आकर श्री व्रजनाथ ने उसका हाथ पकड़ा है और उसे अचल सुहाग प्रदान किया है । पूर्व जन्म के शुभकर्म और सौभाग्य से मीराँ को उसका "गिरधर" पति के रूप में मिल गया है ।

"भाई म्हारे सुपणा माँ परण्याँ दीनानाथ ।
छप्पण कोटाँ जणाँ पधार्याँ दूल्हो सिरी ब्रजनाथ ।
सुपणा माँ तोरण बँध्यारी सुपणामाँ गह्या हाथ ।
सुपणा माँ म्हारे परण गया पायाँ अचल सोहाग ।
मीराँ रो गिरधर मिल्यारी, पुरब जणम रो भाग ।"[75]

मीराँ इसी पति से मिलने के लिए व्याकुल है । मीराँ का संपूर्ण काव्य ही कान्तासक्ति का द्योतक है, चाहे उसमें वियोग का वर्णन हो या संयोग का वर्णन। डॉ॰ भगवानदास तिवारी के अनुसार-" मीराँ का संपूर्ण विरह-काव्य कान्ता-सक्ति की वियोग-दशा का द्योतक और संपूर्ण मिलन-काव्य कान्तासक्ति की संयोगात्मक स्थिति का परिचायक है ।"[76]

कान्तासक्ति के विरही प्राणों की पुकार को वाणी देती हुई मीराँ कहती है कि पिया के बिना उससे नहीं रहा जाता । उसने अपना तन, मन और जीवन प्रियतम पर न्यौछावर कर दिया है । वह दिन-रात उसकी प्रतीक्षा करती रहती है उसे इस बात की चिंता है कि वह कृष्ण का दर्शन कब पायेगी ? कब उसका प्रभु आकर उसे अपने कण्ठ से लगायेगा ?-

"पीय बिण रह्याँ ण जायाँ ।। टेक ।।
तण मण जीवण प्रीतम वार्याँ ।
निस दिन जोवाँ बाट छब रूप लुभावाँ ।
मीराँ रे प्रभु आसा थारी दासी कंठ आवाँ ।"[77]

इस तरह मीराँ के अधिकांश पद कान्तासक्ति के सरस और स्वाभाविक वर्णन से परिपूर्ण बन गये हैं ।

8) वात्सल्यासक्ति :-

मीराँ के काव्य में "बाललीला" के संबंध में कुछ पदों का समावेश है, जिनसे उसका कृष्ण के प्रति "वात्सल्यासक्ति" का भाव प्रकट हुआ है । ऐसे ही एक पद में मीराँ कृष्ण को जगाने का प्रयत्न करती हुजी कहती है-," हे बंसी वाले लाल! जागो । मेरे प्यारे ! जागो । रात बीत गयी है, प्रातः काल हो गया है । सब घरों के द्वार खुल गए हैं । गोपियों के दही मथने की ध्वनि सुनाई दे रही है । दही मथने से उनके कंगन बार-बार झंकृत हो रहे हैं । हे लाल ! उठो भोर हो गया है । द्वार पर सुर-नर सभी आकर खड़े हो गए हैं । सारे ग्वाल-बाल एकत्रित होकर कोलाहल कर रहे हैं और तुम्हारे लिए " जय-जय" शब्द का उच्चारण कर रहे हैं । यह सब सुनकर गो-रक्षक कृष्ण उठ बैठा और उसने खाने के लिए माखन-रोटी हाथ में ले ली । मीराँ कहती है,- " यही कृष्ण शरणागतों का तत्क्षण उध्दार कर देता है ।"

" जागो बंसीवारे ललना, जागो मोरे प्यारे ।। टेक ।।
रजनी बीती भोर भयो है घर-घर खुले किंवारे ।
गोपी दही मथत सुनियत है, कँगना के झणकारे ।
उठो लालजी भोर भयो है, सुर नर ठाढ़े द्वारे ।
ग्वालन बाल सब करत कुलाहल, जय जय सबद उचारे ।
माखन रोटी हाथ में लीनी, गउवन के रखवारे ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सरण आया कूँ तारे ।"[78]

9) आत्मनिवेदनासक्ति :-

सांसारिक बंधनों से मुक्ति पाने के लिए भक्त भगवान से प्रार्थना करता है भक्त की यह प्रार्थना ही उसका भक्ति-भाव है, आत्मनिवेदन है । संसार के सभी सन्तों और भक्तों की साधना-पध्दतियों में प्रायः आत्मनिवेदन की भूमिका पायी जाती है।

मीराँ के मन को नित्य के सांसारिक व्यवहारों के कारण संशय, शोक एवं दु:ख का भार सहन करना पड़ा । मीराँ इस भवसागर में डूबने से बचना चाहती है और युग - युग का कष्ट दूर करना चाहती है । इसलिए मीराँ कृष्ण की शरण में आकर आर्त भाव से निवेदन करती है,-" हे प्रभु ! इस भवसागर से मेरी जीवननौका को पार लगा दे और आवागमन के दु:ख को दूर कर दे -

"मेरो बड़ो लगाज्यो पार, प्रभुजी मैं अरज करूँ छूँ ।। टेक ।।
या भव में मैं बहु दुख पायो, संसा सोग निवार ।
अष्ट करम की तलब लगी है, दूर करो दुख भार ।
यों संसार सब बहयो जात है, लख चौरासी री धार ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, आवागमन निवार ।"[79]

मीराँ ने सभी सांसारिक बातों को त्यागकर अविनाशी कृष्ण का पति के रूप में स्वीकार किया है । उसे साधुओं की संगति में ही हरि-सुख मिलता है; किन्तु राणा के देश में साधु लोगों का निवास नहीं है, दुर्जन लोगों का ही निवास है। इसलिए मीराँ राणा से निवेदन करती है," हे राणा ! तुम्हारे देश में साधु लोग नहीं रहते, बल्कि ईश्वर-भक्ति से उदासीन और सांसारिकता में डूबे सब दुर्जन रहते हैं । इसलिए तुम्हारा यह विचित्र देश-संसार अच्छा नहीं लगता है । हे राणा ! मैंने आभूषण और वस्त्र सब छोड़ दिए हैं । हाथ का चूड़ा भी छोड़ दिया है । माथे पर टीका लगाना और आँखों में काजल डालना तथा जूड़ा बाँधना भी छोड़ दिया है । सांसरिक सुख-साधनों का त्यागकर मैंने गिरधर नागर को पूर्ण वर के रूप में प्राप्त कर लिया है ।"

"नहिं सुख भावै थांरो देसलड़ो रँगरूड़ो ।। टेक ।।
थाँरे देसाँ में राणा साध नहीं छै, लोग बसै सब कूड़ो ।
गहणा गाँठी राणा हम सब त्यागा, त्यागो कर रो चूड़ो ।
काजल टीकी हम सब त्यागा, त्याग्यो छै बाँधन जूड़ो ।

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बर पायो छै पूरो । "80

10) तन्मयतासक्ति :-

भक्त का मन उपास्य देव के सौंदर्य, रूप, गुण और लीलाओं में हर पल मग्न रहता है । भक्त का प्रभु के ध्यान में तन्मय और आत्मविस्मृत हो जाना ही तन्मयतासक्ति है । मीराँ के कई पदों में उसकी श्रीकृष्ण के प्रति तन्मयता प्रकट हो गयी है । मीराँ जब श्रीकृष्ण के साथ होली खेलती है तब वह अलौकिक सुख का अनुभव करती है । उसकी आत्मा गहराई तक पैठ जाती है और उसका समस्त अस्तित्व भी रंग उठता है ।

होली के अवसर पर सभी आपस में रंग-गुलाल खेलते हैं तब मीराँ भी मन ही मन श्रीकृष्ण के साथ होली खेलती है । होली में रंग और राग से उसका मन तन्मय हो जाता है । मीराँ की अलौकिक होली की खुशी निराली है । होली के समय चारों ओर गुलाल के बादल उड़ रहे हैं । उस गुलाल की लालिमा अनोखी बरसात-सी लगती है । सर्वत्र लाल रंग छाया हुआ है । पिचकारी से निकलकर उड़ते हुए रंगो की तो झड़ी सी लग गयी है । मीराँ का तन-मन रंग गया है । कृष्ण के रंगो से उसका रोम-रोम भीग गया है । चोवा चन्दन और अरगजा जैसे सुगंधित पदार्थों से सारा वातावरण सुगंधमय हो गया है और केसर से भरी गागर छलकने लगी है -

" रंग भरी राग भरी रागसूँ भरी री ।
होली खेल्याँ स्याम सँग रँग सूँ भरी, री ।। टेक ।।
उड़त गुलाल, लाल बादला रो रंग लाल,
पिचकाँ उड़ावाँ रंग-रंग री झरी, री ।
चोवा चन्दण अरगजा म्हा, केसर णो गागर भरी ।
मीराँ दासी गिरधर नागर चेरी चरण धरी री । "81

11) परमविरहासक्ति :-

परमविरहासक्ति प्रेम-साधना की पवित्र आत्मा है । इसलिए संसार का संपूर्ण श्रेष्ठ काव्य विरही-प्राणों की व्यथा और अन्तर्पीड़ा से ही निर्माण हुआ है । विरही प्रेमी के प्रत्येक अश्रु-बिन्दु एवं व्यथा में अमर काव्य निर्माण करने की शक्ति होती है । मीराँ के पदों में भी व्यथा, अन्तर्पीडा और आत्मक्रन्दन का अनुभव होता है और उसकी परमविरहासक्ति का वर्णन मिलता है ।

मीराँ को कई दिनों से कृष्ण के दर्शन नहीं हो सके । इसलिए कृष्ण की प्रतीक्षा में बैठी मीराँ विरहव्यथा को व्यक्त करती हुअी कहती है कि उसे कृष्ण दर्शन के बिना घड़ी भर को भी चैन नहीं मिलता । उसके वियोग में उसे घर अच्छा नहीं लगता और नींद भी नही आती । विरह का दुःख उसे सताए जा रहा है । इस विरह के दुःख से घायल होकर वह घूमती-फिरती है; किन्तु उसकी इस विरह व्यथा को कोई नहीं जानता । वह कृष्ण से प्रश्न करती है,-" हे कृष्ण ! क्या तू यही चाहता है कि तेरे दर्शन न होने से शोक के आवेश में मेरे प्राण और रोते-रोते मेरी आँखे, एक दिन नष्ट हो जायें ? मैं मार्ग चलते-चलते और घर में द्वार पर खड़ी रह तेरी ही प्रतीक्षा करती हूँ । हे मीराँ के प्रभु ! तुम मुझसे कब मिलोगे ? तुझसे मिले बिना मुझे सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती है -

" घड़ी चेण णा आवड़ाँ, थे दरसण विण मोय ।
घाम ण भावाँ नींद ण आवाँ, विरह सतावाँ मोय ।
घायल री घूमा फिरा म्हारो दरद ण जाण्या कोय ।
प्राण गुमायाँ झूरताँ रे, नैण गुमायाँ रोय ।
पंथ निहाराँ डगर मझारा, उभी मारग जोय ।
मीराँ रे प्रभु कब रे मिलोगाँ, थें मिल्याँ सुख होय ।"[82]

विरहासक्ति के कारण ही भक्त को आराध्य का सान्निध्य प्राप्त हो जाता है । प्रेम की परिपूर्णता के लिए विरहासक्ति का होना आवश्यक होता है । मीराँ ने स्वयं कई पदों में स्वीकार किया है कि उसका प्रियतम से पुराना परिचय है । उसने अपने जीवन में अश्रु-जल से सींच-सींच कर प्रेम बेली बोयी है । कृष्ण ने उसे अपने प्रेम-बाणों से घायल कर दिया है । इसलिए उसके -हृदय में प्रेमाग्नि प्रज्वलित हो गयी है और वह कृष्णदर्शन के लिए बिल्कुल विवश और अधीर बन गयी है ।

कृष्णदर्शन के लिए अधीर बनी मीराँ कहती है कि कृष्ण-दर्शन के बिना उसकी आँखे दुःखी हैं, पीड़ित हैं । उसके मधुर वचनों की स्मृति से उसके हृदय में कम्पन पैदा हो रहा है । वह अपनी विरह-व्यथा कहें तो किससे कहे ? अैसे समय वह करवत लेकर अपने जीवन का अंत कर देना चाहती है । क्योंकि उसे चैन नहीं पड़ता है । वह कृष्ण की राह देख रही है । उसे विरह की रात "छमासी" लग रही है । कृष्ण से बिछुड़ने के कारण वह कलप रही है । उसका सुख-चैन नष्ट हुआ है । इसलिए वह प्रभु से प्रार्थना करती है, " हे प्रभु । तू ही सुखदायक है और तेरे ही कारण मेरा दुःख दूर होनेवाला है । तू मुझसे कब मिलेगा ?"

" दरस विण दूखाँ म्हारा णेण ।। टेक ।।
सबदाँ सुणताँ मेरी छातियाँ काँ पाँ मीठो थारो वैण ।
बिरह विथा कासूँ री कहयाँ पैठाँ करवत ऐण ।
कल णा परताँ पल हरि मग जोवाँ भयाँ छमासी रैण ।
थे बिछड्या म्हाँ कलपाँ प्रभुजी, म्हारो गयो सब चैण ।
मीराँ रे प्रभु कबरे मिलोगे, दुख मेटण सुख दैण । "83

मीराँ की भक्ति में भक्ति की ये ग्यारह आसक्तियाँ विद्यमान हैं- वह कृष्ण के गुणों की महिमा गाती है । वह कृष्ण की रूपमाधुरी पर आसक्त है, नित्य

श्रीकृष्ण-पूजा, सेवा करती है और उसी हरि अविनाशी के स्मरण में लीन होती है । उसे कृष्ण की "चाकरी" में भी सुख मिलता है । मीराँ ने श्रीकृष्ण को "जीवनसखा" के रूप में स्वीकार कर लिया है । वह उसकी अमर वधू बनी है । यह भाग्य उसके पूर्व जन्म के अच्छे कर्मों का ही फल है । वह कृष्ण को बाल रूप में देखकर उसे जगाने का प्रयत्न भी करती है । मीराँ श्रीकृष्ण से नित्य आत्मनिवेदन करती है कि वह उसे सांसारिक बंधन से मुक्ति दे । मीराँ श्रीकृष्ण के ध्यान में इतनी तन्मय होती है कि वह सारा संसार भूल जाती ही है, साथ ही उसे अपना भी ध्यान नहीं रहता । मीराँ की भक्ति विरहासक्ति से परिपूर्ण है । उसकी विरह-साधना का लक्ष्य प्रिय को अपने आपको सौंप देना ही है । इस तरह मीराँ की भक्ति में आत्मनिवेदनासक्ति और परमविरहासक्ति की प्रधानता है । कान्तासक्ति, रूपासक्ति और तन्मयतासक्ति का विशेष रूप से उल्लेख मिलता है और वात्सल्यासक्ति का अभाव दिखायी देता है ।

निर्गुण भक्तिभावना :

मीराँ कृष्ण भक्त के रूप में प्रसिध्द है । उसकी भक्ति सगुण की ही है । निर्गुण भक्तिभावना को मीराँ ने अपनी भक्तिभावना में तीव्रता और वैचित्र्य प्रदान करने के लिए ही अपनाया है । इसलिए मीराँ की भक्ति में निर्गुण धारा के नाथ संप्रदाय और संत संप्रदाय की कुछ प्रवृत्तियाँ दिखायी देती हैं ।

(क) नाथ संप्रदाय की प्रवृत्तियाँ :

इस संप्रदाय के प्रवर्तक गोरखनाथ माने जाते हैं । इस संप्रदाय की साधना-पध्दति को हठयोग कहते हैं । मीराँ के समय नाथ संप्रदाय का प्रभाव राजस्थान तथा उत्तरी भारत में पूर्ण रूप से था । उस समय बाह्य साधनों की अपेक्षा घट-घट वासी ईश्वर की सर्वव्यापकता पर बल दिया गया था । मन लगाकर

जप करके, आसन पर बैठकर, रात-दिन ब्रह्मज्ञान का चिंतन कर आत्मा और परमात्मा का भेद दूर किया जाता था ।

नाथ संप्रदाय की निर्गुण-निराकार की भक्ति की कुछ प्रवृत्तियाँ मीराँ के पदों में दिखायी देती है ।

(क) <u>अद्वैत भावना</u> :

मीराँ आत्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं मानती । आत्मा परमात्मा का ही एक अंश है । इस मायावी संसार में आने से आत्मा परमात्मा से पृथक होती है और माया का आवरण हटते ही वह परमात्मा में मिल जाती है ।

अपने प्रिय से मिलन करने में मीराँ को कोई संकोच नहीं । वह अपने प्रिय श्रीकृष्ण से सिर्फ पंच भौतिक देह धारण कर मिलती है । मीराँ कहती है कि उसका प्रिय उसके -हृदय में ही बसा है, इसलिए उसे खत लिखने की जरूरत नहीं और उसे खोजने की भी आवश्यकता नहीं । मीराँ गिरधर के रंग में रंगी हुअी है । वह उसीमें पूर्णरूप से अनुरक्त है -

"म्हाँ गिरधर रंग राती, सैयाँ म्हाँ ।। टेक ।।
पँचरँग चोला पहरया सखी म्हाँ, झिरमिट खेलण जाती ।
वाँ झरमिट माँ मिल्यों साँवरो, देख्याँ तण मण राती ।
जिणरो पियाँ परदेश बस्याँ री लिख लिख भेज्याँ पाती ।
म्हारा पियाँ म्हरे हीयड़े बसताँ णा आवाँ णा जाती ।
मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर मग जोवाँ दिण राती ।"[84]

मीराँ की भक्ति का प्रमुख लक्ष्य कृष्ण-मिलन है । उसकी भक्ति में

सगुण के गुणगान के साथ-साथ अद्वैत की भावना बड़ी सहजता से प्रस्तुत हो गयी है। मीराँ अपने पद में प्रियतम को जोगी संबोधित कर कहती है," हे जोगी ! मैं तेरे पाव पड़ती हूँ, मैं तेरे चरणों की दासी हूँ, तू कहीं मत जा । इस प्रेमभक्ति का मार्ग ही भिन्न है, मुझे इसका रास्ता बता दे । मैं अगर की लकड़ी की चिता बनाऊँगी, तू उस चिता को अपने हाथों से प्रज्वलित कर और जब मेरा शरीर उस चिता में जलकर भस्म हो जाएगा तब उस भस्म को तू अपने अंग लगा ले । इस प्रकार मेरी मृत्यु के बाद मेरे शरीर की राख का और तेरे शरीर का मिलन होगा । राजस्थान में प्रेमी के लिये जोगी शब्द का प्रयोग किया जाता है । यहाँ मीराँ ने अपने प्रेमी गिरिधर के लिये जोगी शब्द का प्रयोग किया है ।" मीराँ का कहना है कि कृष्ण जब उसके शरीर की राख को अपने अंग लगाएगा तब उसका और कृष्ण का मिलन हो जाएगा । अर्थात् इस प्रकार अंशांशी का मिलन हो जाएगा -

"जोगी मत जा मत जा मत जा पाइ परूँ मैं तेरी चेरी हौं ।।टेक।।
प्रेम भगति को पैड़ो ही न्यारो हमको गैल बता जा ।
अगर चँदण की चिता वणाऊँ, अपने हाथ जला जा ।
जल बल भई भस्म की ढेरी, अपने अंग लगा जा ।
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर जोत में जोत मिला जा ।।"[85]

कृष्ण प्रियतम से मीराँ का सम्बन्ध अद्वैत भाव का है । जिस प्रकार "सूरज घामा" एक ही शक्ति के दो रूप भासित होते हैं, पर वस्तुतः हैं एक ही, इसी प्रकार मीराँ भी अपने प्रियतम का एक अंश है, उसी का स्वरूप है, केवल काया के आवरण के कारण वह भिन्न प्रतीत होती है -

"तुम बिच हम बिच अंतर नाहीं, जैसे सूरज घामा ।
मीराँ के मन अवर न माने चाहे सुन्दर स्यामाँ ।।"[86]

§ख§ संसार के प्रति नश्वरता की भावना :-

नाथ संप्रदाय में संसार की सभी चीजों को नश्वर कहा गया है । "ब्रह्म सत्यम् जगन्मिथ्या" की तरह ही मीराँ ने भी संसार की सभी चीजों को मिथ्या तथा नश्वर माना है । अपनी आँखों के सामने मीराँ ने अपने कई रिश्तेदारों की मौत देखी थी । इससे उसका मन दुःखी, विरक्त बनने लगा था । पति की मृत्यु से उसका मन और विरक्त बना । दुनिया की हर चीज की क्षणभंगुरता, नश्वरता को देखकर उसका मन दुनिया से उचट गया । उसने दुनिया की सभी वस्तुओं को झूठा बताया, यहाँ तक कि माणिक्य, मोती और उनकी जगमगाहट को भी मिथ्या कहा -

"झूठा माणिक मोतिया री, झूठी जगमग जोति ।
झूठा आभूषणा री, साँचि पियाजी री पोती ।।"[87]

मीराँ ने सोचा - दुनिया की चीज से प्राणियों से नेह - नाता जोड़कर क्या फायदा ? अगर वह हर चीज, हर प्राणी नश्वर है । इसी कारण उसने अविनाशी कृष्ण से नाता जोड़ा-जिसका कभी विनाश नहीं होता । मीराँ कहती है कि संसार के सभी बंधन मिथ्या हैं । जो इसको त्याग कर श्रीकृष्ण की शरण में जाएगा वही इस भवसागर से पार होगा -

"स्याम म्हाँ बाँहड़ियाँ जी गहयाँ ।।टेक।।
भोसागर मझधाराँ बूडयाँ, थारी सरण लहयाँ ।
म्हारे अवगुण पार अपारा थें विण कूण सहयाँ ।
मीराँ रे प्रभु हरि अविनासी, लाज विरद री बहयाँ ।।"[88]

§ग§ बाह्याडंबर :-

मीराँ ने जोगिन का वेश धारण करके अपने प्रियतम से मिलने का प्रयास

किया है । वह कृष्ण से मिलने के लिए स्वयं "जोगिन" बन जाती है । पूरे शरीर परविभूति लगाकर एवं गले में मृग-चर्म पहनकर जोगन का वेश धारण कर लेती है -

"अंग भभूति गले मृगछाला, तू जन गुढिया खोल ।
सेली नाद बभूत न बटवो, अंजूं मुनी मुख खोल ।।"[89]

§घ§ "जोगी" और "जोगिन" जैसे शब्दों का प्रयोग :-

राजस्थान में अवश्य ही नाथ-सम्प्रदाय की कोई परंपरा चली होगी जिसका प्रभाव मीराँ पर पडा होगा । यही कारण है कि मीराँ के पदों में नाथ - संम्प्रदाय की शब्दावली पाई जाती है, और मीराँ अपने प्रियतम को "जोगी" शब्द से सम्बोधित करती है -

"जोगी म्हाँने, दरस दियाँ सुख होई ।"[90]
"जोगीया जी आज्यो जी इण देस।।"[91]

मीराँ के पदों में "जोगी" तथा अन्य कुछ शब्दों के अतिरिक्त कहीं भी नाथ संप्रदाय की शब्दावली का प्रयोग नहीं मिलता । अतः यह निश्चित है कि मीराँ का "जोगी" प्रयोग किसी साधना-पध्दति विशेष का सूचक नहीं, बल्कि मीराँ की स्वच्छन्द प्रवृत्ति का द्योतक है ।

विद्वानों के अनुसार राजस्थान की स्त्रियाँ अपने प्रति के लिए जोगी, जोगिया,बालम आदि शब्दों का प्रयोग करती हैं । मीराँ राजस्थान की थी और उसने भीअपने प्रेमी-पति को उसी अर्थ में "जोगी" कहा है । इसके संबंध में प्रो· देशराजसिंह भाटी लिखते हैं, - "मीराँ पर जो नाथ-संप्रदाय का प्रभाव दिखाई देता है, वह साम्प्रदायिक भावना के कारण नहीं, अपितु भावों की स्वच्छन्द विचार-धारा में इधर-उधर बह जाने के कारण है ।"[92]

§ख§ संत संप्रदाय की प्रवृत्तियाँ :-

संत संप्रदाय का प्रभाव मीराँ के पदों में दिखायी देता है । मीराँ ने निर्गुणसन्तों के समान ही अपने प्रियतम को अविनाशी, रमईया, रमैया आदि नामों से संबोधित किया है ।

"मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, नैणां देख्या भावे हो ।"[93]
"रमईया मेरे तोही सूँ लागी नेह ।"[94]
"रमैया बिन नींद न आवै ।"[95]

§च§ निर्गुण निराकार ब्रहम :-

मीराँ ने सन्तों के प्रभाव में आकर अपने कई पदों में गिरधर नागर को निर्गुण निराकार ब्रह्म के रूप में प्रस्तुत किया है । मीराँ के मन पर जैसा भी प्रभाव पड़ा, भावों में जिस प्रकार की हिलोरें उठीं, उसी प्रकार से इसने अपने आराध्य का वर्णनकिया है । यही कारण है कि कहीं तो इसका ब्रहम कृष्ण-भक्त-कवियों के कृष्ण के रूप में वर्णित है तो कहीं वह सन्त-कवियों का निर्गुण ब्रहम बन जाता है, जो सब के घट-घट में बसा है । मीराँ का प्रियतम भी उसके हृदय में ही बसा हुआ है -

"जिणरो पियाँ परदेश बस्याँ री लिख लिख भेज्याँ पाती ।
म्हारा पियाँ म्हरे हीयड़े बसताँ णा आवाँ णा जाती ।।"[96]

§छ§ विधि और निषेध :-

सन्तों के समान मीराँ ने हृदय की पवित्रता के लिए काम, क्रोध, लोभ, मोह, तृष्णा आदि को त्यागकर उदारता, शील, क्षमा, संतोष, दैन्य आदि गुणों का स्वीकार किया है -

"काम क्रोध मद लोभ मोह कूं, बहा चित्त से दीजै ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, ताहि के संग में भीजे ।।"[97]

§ज§ अद्वैत भावना :-

सन्तों ने आत्मा को परमात्मा का ही अंश माना है । मीराँ भी जीवात्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं मानती । वह इस अद्वैत भावना को सूर्य और धूप के माध्यम से व्यक्त करती है -

"तुम बिच हम बिच अंतर नाहीं, जैसे सूरज धामा ।
मीराँ के मन अवर न माने चाहे सुन्दर स्यामाँ ।।"[98]

§झ§ आत्मसमर्पण :-

सन्त कवियों ने जिस राम को अपना आराध्य माना है और जिसके प्रति सर्वस्व समर्पण किया है, वह निर्गुण एवं निराकार है । मीराँ का आराध्य सगुण, साकारहै । उसने भी अपने आराध्य के प्रति सर्वस्व समर्पण किया है -

"असा प्रभु जाण न दीजे हो ।।टेक।।
तन मन धन करि वारणै, हिरदे धरि लीजे, हो ।
जिह जिह विधि रीझे हरी, सोई विधि कीजे, हो ।
सुन्दर स्याम सुहाबणा, मुख देख्याँ जीजे, हो ।।"[99]

§त्र§ जीवन और संसार की नश्वरता :-

सन्तों के समान मीराँ ने जीवन और संसार को नश्वर माना है तथा इनके प्रति मोह न करने के लिए मन को बार-बार डाँट दी है । वह कहती है, "हे मन! तू अविनाशी की वन्दना कर । इस धरती और आकाश के बीच जो कुछ भी दिखाई दे रहा है सब नश्वर है । इस नश्वर शरीर पर गर्व करना व्यर्थ है, क्यों कि

यह पल भर में मिट्टी में मिल जानेवाला है । संसार का खेल क्षणिक है, जो संध्या होते ही उठ जानेवाला है । यहाँ तीर्थाटन, व्रत काशी में जाकर करवत लेने से भी कुछ लाभ नहीं होनेवाला है । सब व्यर्थ ही है ।" -

"भज मण चरण कँवल अवणासी ।।टेक।।
जेताई दीसां धरण गगन माँ, तेताई उठ जासी ।
तीरथ बरताँ ग्याँण कथंता, कहा लियाँ करवत कासी ।
यो देही रो गरब णा करणा, माटी माँ मिल जासी ।
यो संसार चहर रो बाजी, साँझ पड्याँ उठ जासी ।
कहा भयाँ था भगवा पहर्‌याँ घर तज लयाँ संन्यासी ।
मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर, काट्‌याँ म्हारो गाँसी ।।"[100]

पूर्व जन्म के पुण्य कर्म के कारण ही मीराँ को मनुष्य का जीवन प्राप्त हुआ है । इस जीवन की नश्वरता को व्यक्त करती हुई वह कहती है -

"काँई म्हारो जणम बारम्बार ।।टेक।।
पूरबला काँई पुन्न खुँट्‌याँ माणसा अवतार ।
बढ्‌या छिण छिण घट्‌या पल पल, जातणा कछ वार ।
दासी मीराँ लाल गिरधर, जीवणा दिन च्यार ।।"[101]

§ट§ <u>कान्ता भाव की भक्ति :-</u>

भक्ति का अर्थ सेवा करना है; किन्तु प्रसंगानुसार भक्ति के अनेक प्रकार बनगये हैं । भक्ति के अनेक प्रकारों में परम सौंदर्य और परम आनन्द युक्त "माधुर्य भक्ति" सर्वश्रेष्ठ है । ईश्वर के प्रति आत्मरति या पत्नी के रूप में प्रेम रखना ही "माधुर्य भक्ति" है । भक्त स्वयं पत्नी और ईश्वर को अपना पति मानता है । भक्त

और भगवान में पति-पत्नी जैसी गाढ़ी आसक्ति होती है ।

सभी भक्ति पद्धतियों की चरम परिणति "माधुर्य भक्ति" में होती है । इस माधुर्य भक्ति को कान्ता-भाव की भक्ति भी कहते हैं । सन्त कवियों की भक्ति में कान्ता-भाव की भक्ति की प्रधानता है । मीराँ की भक्ति में कान्ता-भाव की भक्ति सन्त कवियों की अपेक्षा अधिक मधुर और स्वाभाविक बन गयी है । इसका महत्वपूर्ण कारण यह है कि सन्तों ने स्वयं पर नारी भाव का आरोप किया है और मीराँ स्वयं नारी है ।

§ठ§ सन्तों की शब्दावली और शैली :-

मीराँ के काव्य में सन्तों की-सी शब्दावली और शैली का प्रयोग दिखायी देता है । मीराँ ने अपने कई पदों में सन्तों द्वारा प्रयुक्त अविनासी शब्द का प्रयोग किया है -

"मीराँ के प्रभु अबिनासी, सरण गह्याँ थें दासी ।"[102]

मीराँ के जिन पदों में उसकी विनय की भावना व्यक्त हुई है, उनमें सन्तों की-सी शैली का भी बोध होता है -

"हरि विण कूण गति मेरी
तुम मेरे प्रतिपाल कहिये, मैं रावरी चेरी ।।"[103]

इस तरह मीराँ के पदों में सन्त-संप्रदाय की शैली और शब्दावली के कुछ उदाहरण मिलते हैं ।

मीराँ के आराध्य-श्रीकृष्ण में और सन्तों के निर्गुण ब्रहम में संयोगवश साम्यदिखायी देता है, किन्तु दोनों में बहुत बडा अन्तर है । मीराँ का आराध्य सगुण है, तो सन्तों का आराध्य निर्गुण ।

निष्कर्ष :-

मीराँ भारत के कृष्णभक्तों में एक प्रमुख स्त्री भक्त है । हिंदी भक्ति-काव्य में "गिरधर गोपाल" से प्रेम करनेवाली मीराँ का स्थान महत्वपूर्ण बन गया है । मीराँ का बचपन धार्मिक और सुसंस्कारित वातावरण में बीता है । उसका संपूर्ण जीवन ही "श्रीकृष्ण की भक्ति"में व्यतीत हुआ है ।

मीराँ ने "श्रीकृष्ण की भक्ति" के लिए लौक-निंदा और राजकुल की मर्यादाओं का त्याग किया है । उसने जीवनपर्यंत श्रीकृष्ण को ही अपना पति और प्रियतम मानकर उसे अपना सर्वस्व समर्पित किया है ।

मीराँ ने किसी दार्शनिक परंपरा या भक्ति-परंपरा का स्वीकार नहीं किया है। मीराँ का प्रत्येक पद उसके प्रेमी हृदय की सच्ची कथा बना है । उसके जीवन का एक मात्र लक्ष्य "श्रीकृष्ण की भक्ति" है । इसलिए उसके काव्य में भक्ति सहज और स्वाभाविक रूप में अभिव्यक्त हो गयी है । मीराँ उदार भक्त थी । मीराँ को जहाँ भी भक्ति-भाव का जो रूप अच्छा लगा, उसे वह अपनाती गयी है । इसलिए उसकी भक्तिभावना में भक्ति के विभिन्न रूप अभिव्यक्त हो गए हैं ।

मीराँ का आराध्य सगुण-साकार अवतारी कृष्ण है । उसकी सारी भक्तिभावनासगुण, साकार, अवतारी कृष्ण पर कैंद्रित है । मीराँ श्रीकृष्ण के प्रति आकर्षित है । वह उसके अनुपम सौंदर्य का बार-बार वर्णन करती है और अपने उपास्य देव को साकार और सजीव पति के रूप में मानती है । इसलिए उसकी भक्ति प्रमुख रूप से

सगुण रूप की है । वैष्णव संप्रदाय के प्रभावसे मीराँ की भक्ति में उस संप्रदाय की नवधा भक्ति के सभी अंगों का उल्लेख मिलता है । मीराँ वैष्णव भक्तों की तरह भगवान के अनुग्रह को अधिक महत्व देती है । मीराँ में भगवान के प्रति अनन्य भक्ति, श्रध्दा और विश्वास है । वह सदैव उसी का नामस्मरण करती है । उपास्य देव के गुणों का गान गाती है । मंदिर जाकर हरि दर्शन करती है । नित्य चरणामृत लेती है और साधुओं की संगति में कीर्तन करती है । मीराँ की भक्ति पर चैतन्य संप्रदाय का भी प्रभाव दिखायी देता है । मीराँ की भक्ति में चैतन्य संप्रदाय की "माधुर्य भक्ति" की सभी विशेषताएँ बड़ी सुलभ और सहज रूप में अभिव्यक्त हो गयी हैं । वह कृष्ण को पति मानकर उसके साथ अटूट संबंध स्थापित करती है । इससे दोनों में रहा-सहा अंतरमिट गया है ।

मीराँ की माधुर्य भक्ति में दाम्पत्य भाव की तन्मयता और आत्मविभोरता स्पष्ट हो गयी है । मीराँ स्वयं गोपी बनी है । उसकी भक्ति निश्छल भक्ति है । उसका माधुर्य संबंध केवल इस जन्मतक मर्यादित न होकर जन्म-जन्म का स्थायी संबंध है । कृष्ण के प्रति उसका पूज्य भाव है । अतः उसकी भक्ति में कहीं भी अश्लीलता एवं वासना का स्पर्श नहीं हुआ है । मीराँ का कृष्ण सुंदर और परम मोहक है । मीराँ उसके रूप सौंदर्य से मोहित होकर अपने प्राण उस पर न्यौछावर करती हैं । मीराँ की भक्ति में कृष्ण के रूप का वर्णन परंपरागत रूप में मिलता है । इसके लिए मीराँ ने परिचित उपमानों का प्रयोग किया है । इससे मीराँ के कृष्ण-रूपवर्णन में स्वाभाविकता एवं सहजता आ गयी है । मीराँ की भक्ति में विरहानुभूति की प्रधानता है । उसे मीराँ ने बड़े मार्मिक ढंग से अभिव्यक्त किया है । मीराँ के विरह में आध्यात्मिकता है । उसकी विरह-वेदना का लक्ष्य कृष्ण-मिलन है । मीराँ की भक्ति में आत्मसमर्पण की भावना कूट-कूटकर भर गयी है । इसी आत्मसमर्पण के कारण मीराँ और कृष्ण में रहा-सहा अंतर मिट गया है और मीराँ कृष्णमयी हो गयी है ।

मीराँ की भक्ति श्रीकृष्ण की आसक्ति से शुरु हुआी है । मीराँ में कृष्ण के

शील, शक्ति, सौंदर्य के प्रति मानसिक, शारीरिक और आत्मिक आकर्षण है । उसकी भक्ति में "नारद-भक्ति-सूत्र" की ग्यारह आसक्तियाँ स्पष्ट हो गयी हैं । उसकी भक्ति में आत्मनिवेदनासक्ति और परमविरहासक्ति की प्रधानता है । मीराँ के काव्य में कान्तासक्ति, रूपासक्ति और तन्मयतासक्ति का विशेष रूप में उल्लेख हुआ है; किन्तु उसकी भक्ति में वासल्यासक्ति का अभाव दिखायी देता है ।

मीराँ की भक्ति सगुण रूप की ही है । निर्गुण भक्तिभावना को मीराँ ने अपनी भक्तिभावना में तीव्रता एवं वैचित्र्य प्रदान करने के लिए ही अपनाया है । उसकी भक्ति में निर्गुणधारा के नाथ-संप्रदाय और संतसंप्रदाय की भी कुछ प्रवृत्तियों का विवेचन मिलता है । मीराँ के भावों की स्वच्छंद विचारधारा के कारण उसकी भक्ति में नाथ संप्रदाय की अद्वैत भावना, संसार के प्रति नश्वरता की भावना, बाह्याडंबर, "जोगी" और "जोगिन" आदि का प्रयोग मिलता है ।

मीराँ ने निर्गुण सन्तों के समान अपने प्रियतम को अविनाशी, रमईया, रमैया आदि नामोंसे संबोधित किया है । उसकी भक्ति में निर्गुण सन्तों की कुछ प्रवृत्तियाँ भी हैं । मीराँ के आराध्य-श्रीकृष्ण में और सन्तों के निर्गुण ब्रह्म में संयोगवश साम्य दिखायी देता है; किन्तु दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है । मीराँ का आराध्य सगुणहै, तो सन्तों का आराध्य निर्गुण ।

मीराँ के मन पर जैसा भी प्रभाव पड़ा, भावों में जिस प्रकार की हिलोरें उठीं, उसी प्रकार से उसने अपने आराध्य का वर्णन किया है । यही कारण है कि उसके पदों में भक्ति के विभिन्न रूप अभिव्यक्त हो गये हैं ।

संदर्भ - ग्रंथ - सूची

§1§ डॉ॰प्रभात

"मीराँबाई"

पृष्ठ क्र॰ 383

हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड, हीराबाग बंबई 4

प्रथम संस्करण - 1965॰

§2§ डॉ॰ प्रभात

"मीराँबाई"

पृष्ठ क्र॰ 302

हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर प्राइवेट लिमिटेड, हीराबाग बंबई 4

प्रथम संस्करण - 1965॰

§3§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम

"मीराँबाई की पदावली"

पृष्ठ क्र॰99, पद क्र॰3

हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग

पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973॰

§4§ डॉ॰ शेखावत कल्याणसिंह

"मीराँबाई का जीवनवृत्त एवं काव्य"

पृष्ठ क्र॰ 188

हिन्दी साहित्य मंदिर, जोधपुर

प्रथम संस्करण - 1978॰

§5§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम

"मीराँबाई की पदावली"

पृष्ठ क्र॰ 104, पद क्र॰ 18

हिन्दी साहित्य सम्मलेन प्रयाग

पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973॰

§6§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीरांबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र. 99, पद क्र.3
हिन्दी साहित्य सम्मलेन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973.

§7§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीरांबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र. 151, पद क्र. 177
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973.

§8§ डॉ. भटनागर लाजवन्ती
"धर्म-संप्रदाय और मीरां का भक्ति-भाव"
पृष्ठ क्र.63
वाणी प्रकाशन 61-एफ, कमलानगर, दिल्ली
प्रथम संस्करण - 1880.

§9§ डॉ. शेखावत कल्याणसिंह
"मीरांबाई का जीवनवृत्त एवं काव्य"
पृष्ठ क्र.201
हिन्दी साहित्य मंदिर, जोधपुर
प्रथम संस्करण - 1978.

§10§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीरांबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र. 158, पद क्र. 199
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973.

§11§ डॉ॰ तिवारी भगवानदास
"मीराँ की भक्ति और उनकी काव्यसाधना का अनुशीलन"
पृष्ठ क्र॰ 176
साहित्य भवन §प्रा§ लिमिटेड के॰पी॰कक्कड़ रोड इलाहाबाद
प्रथम संस्करण - 1974॰

§12§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र॰ 146, पद क्र॰159
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973॰

§13§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र॰140, पद क्र॰ 140
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973॰

§14§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र॰99 पद क्र॰1
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973॰

§15§ डॉ॰ तिवारी भगवानदास,
"मीराँ की भक्ति और उनकी काव्यसाधना का अनुशीलन"
पृष्ठ क्र॰178
साहित्य भवन §प्रा§ लिमिटेड,के॰पी॰कक्कड़ रोड इलाहाबाद
प्रथम संस्करण - 1974॰

§16§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र॰ 157, पद क्र॰ 198
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973॰

§17§ प्रो॰ भाटी देशराजसिंह
"मीराँ की काव्य-कला"
पृष्ठ क्र॰ 107
जगदीशचन्द्र गुप्त अशोक प्रकाशन नई सड़क, दिल्ली
प्रथम संस्करण - 1962॰

§18§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र॰99, पद क्र॰2
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973॰

§19§ डॉ॰ रामप्रकाश
"मीराँबाई की काव्यसाधना"
पृष्ठ क्र॰ 75,
हिन्दी साहित्य संसार दिल्ली - 6
प्रथम संस्करण - 1972॰

§20§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र॰139, पद क्र॰ 133
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973॰

§21§ डॉ॰ तिवारी भगवानदास
"मीराँ की भक्ति और उनकी काव्य-साधना का अनुशीलन"
पृष्ठ क्र॰ 179
साहित्य भवन §प्रा§ लिमिटेड के॰पी॰कक्कड़ रोड, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण - 1974॰

§22§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र॰ 131, पद क्र॰ 106,
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973॰

§23§ प्रो॰ भाटी देशराजसिंह
"मीराँ की काव्य-कला"
पृष्ठ क्र॰ 108
जगदीशचन्द्र गुप्त अशोक प्रकाशन नई सड़क दिल्ली
प्रथम संस्करण - 1962॰

§24§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र॰120, पद क्र॰69
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973॰

§25§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र॰110, पद क्र॰33
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973॰

§26§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र• 104, पद क्र• 18
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§27§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र• 137, पद क्र• 126,
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§28§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र•114, पद क्र• 48
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§29§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र•118, पद क्र•61
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§30§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र• 111, पद क्र•36
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§31§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र॰118, पद क्र॰62,
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग,
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973॰

§32§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र॰139, पद क्र॰133,
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973॰

§33§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र॰127, पद क्र॰90
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग,
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973॰

§34§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र॰100, पद क्र॰4,
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973॰

§35§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र॰133, पद क्र॰144
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973॰

§36§ डॉ॰ झारी कृष्णदेव
"मीराँबाई"
पृष्ठ क्र॰ 76
शारदा प्रकाशन महरौली, नई दिल्ली - 30
प्रथम संस्करण - 1976॰

§37§ डॉ॰ गुप्त गणपतिचन्द्र
"हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास"
पृष्ठ क्र॰ 307
लोकभारती प्रकाशन 15-ए, महात्मा गांधी
द्वितीय संशोधित संस्करण - 1978॰

§38§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र॰ 102, पद क्र॰11
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973॰

§39§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र॰102, पद क्र॰12
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973॰

§40§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र॰147, पद क्र॰ 162
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973॰

§41§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क• 147, पद क•164
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§42§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क•101, पद क•10
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§43§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क•120, पद क•70
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§44§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क•125, पद क•84
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§45§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क•135, पद क•118
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§46§ डॉ• तिवारी भगवानदास
"मीराँ की भक्ति और उनकी काव्यसाधना का अनुशीलन"
पृष्ठ क्र• 219
साहित्य भवन §प्रा§ लिमिटेड के•पी•कक्कड़ रोड इलाहाबाद
प्रथम संस्करण - 1974•

§47§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र•144, पद क्र•153
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§48§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र•119, पद क्र•64
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§49§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र•119, पद क्र•65
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§50§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र•122, पद क्र•76
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§51§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क•122, पद क•77
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§52§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क•156, पद क• 192
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§53§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क•114, पद क•50
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§54§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क•132, पद क•110
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§55§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क•147, पद क•163
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§56§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
मीरांबाई की पदावली
पृष्ठ क्र॰ 138, पद क्र॰ 131
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973॰

§57§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीरांबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र॰123, पद क्र॰78
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973॰

§58§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीरांबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र॰125, पद क्र॰86
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973॰

§59§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीरांबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र॰103, पद क्र॰ 17
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973॰

§60§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीरांबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र॰131, पद क्र॰107
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973॰

§61§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र•120, पद क्र•69
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§62§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र•126, पद क्र•89
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§63§ डॉ• मिश्र भुवनेश्वरनाथ "माधव"
"मीराँ की प्रेमसाधना"
पृष्ठ क्र•208
राजकमल प्रकाशन §प्रा§ लि• दिल्ली - 6
चतुर्थ संस्करण•

§64§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र• 104, पद क्र•20
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§65§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र•112, पद क्र•42
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§66§ डॉ• मिश्र भुवनेश्वरनाथ
"मीरां की प्रेमसाधना"
पृष्ठ क्र•196
राजकमल प्रकाशन §प्रा§ लि• दिल्ली - 6
परिवर्तित एवं परिवर्धित चतुर्थ संस्करण

§67§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीरांबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र•105, पद क्र•22
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवां संस्करण - 1973•

§68§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीरांबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र•111, पद क्र•39
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवां संस्करण - 1973•

§69§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीरांबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र•102, पद क्र•13
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवां संस्करण - 1973•

§70§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीरांबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र•103, पद क्र•14
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवां संस्करण - 1973•

§71§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र• 146, पद क्र•160
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§72§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र•158,पद क्र•200
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§73§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र•114, पद क्र•154
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§74§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र•158, पद क्र•201
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§75§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र•108, पद क्र•27
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§76§ डॉ· तिवारी भगवानदास
"मीरॉं की भक्ति और उनकी काव्यसाधना का अनुशीलन"
पृष्ठ क्र·207
साहित्य भवन §प्रा§ लिमिटेड के·पी·कक्कड रोड, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण - 1974·

§77§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीरॉंबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र·121, पद क्र·71
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवॉं संस्करण - 1973·

§78§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीरॉंबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र·148, पद क्र·165
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवॉं संस्करण - 1973·

§79§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीरॉंबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र·139, पद क्र·135
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवॉं संस्करण - 1973·

§80§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीरॉंबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र·109, पद क्र·32
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवॉं संस्करण - 1973·

§81§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क•143, पद क•148
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§82§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क•130, पद क•102
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§83§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क•130, पद क•103
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§84§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क•105, पद क•23
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§85§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क•114, पद क•46
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§86§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र•113, पद क्र•114
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§87§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र•107, पद क्र•26
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§88§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र•140, पद क्र•138
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§89§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र•117, पद क्र•58
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§90§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र•129, पद क्र•97
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§91§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र•134, पद क्र•116
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§92§ प्रो• भाटी देशराजसिंह
"मीराँ की काव्यकला"
पृष्ठ क्र•29
जगदीशचन्द्र गुप्त अशोक प्रकाशन नई सड़क दिल्ली
प्रथम संस्करण - 1962•

§93§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र•127, पद क्र•92
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§94§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र•117, पद क्र•59
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§95§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र•121, पद क्र•74
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

(96) आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क• 105, पद क•23
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

(97) आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क•158पद क• 199
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

(98) आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क•133, पद क•114
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

(99) आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क•103, पद क•16
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

(100) आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क•156, पद क•195
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§101§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र•157, पद क्र•196
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयोग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§102§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र• 156, पद क्र• 194
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•

§103§ आचार्य चतुर्वेदी परशुराम
"मीराँबाई की पदावली"
पृष्ठ क्र• 118, पद क्र•63
हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग
पन्द्रहवाँ संस्करण - 1973•